आर्य्यसमाज शास्त्रार्थ पत्र

पण्डित साधुसिंह तथा आर्य्यसमाज का
संवाद रूप

अर्थात् आर्य्यसमाज प्रविष्ट पुरुष कृत प्रतिमा
पूजन विषय में कुतर्क खण्डन और प्रतिमापू
जनें का मंत्रादि प्रमाणों से मण्डन

जिसको

सेठ जानकी प्रसाद, सेठ रामसरन दास, हरिशं
कर, रामकिशोर, जानकीदास रामचन्द्रादि ध
र्म्मसभास्थ सत्पुरुष निवासी डिभाई ज़ि॰ बुलंदशहरने

स्थानमथुरा

मथुरा नाम शिलायंत्रालय में श्रीयुत मुंशी
रामनारायणजी के प्रबन्ध से मुद्रित
कराया

मूल्य प्रति पु ।॥ डाक महसूल ॥

सम्बत १९४६ वैक्रमी

प्रस्तावना

एक समय (संवत् १९४५ में) यह शरीर चातुर्मास्य पीलीभीत में श्रीयुत् लाला द्वारिकादास के बग़ीचे में ठहरा था वहां किञ्चित् शास्त्र संस्कार शून्य पुरुष सनातन धर्म्म से प्रच्युत होकर नवीन मतावलंबी होरहे हैं उनमें से अमराऊ नाम वाला एक शरीर इसको कथन करता हुआ जो हमारे स्वामी एक आर्य्यसमाज उपदेशक आये हुए हैं- आप कुछभी उनसे विचार करें तब इसने कहा जितने विचार हैं वे प्रमाण पूर्वक होते हैं प्रथम वेद प्रमाण का निश्चय होतो पश्चात् और विचार होगा तब उसने कहा जो हम मंत्रसंहिता मात्र को वेद मानते हैं तब इसने कहा यदि स्वतः प्रमाण कर माने मंत्र प्रमाण से ब्राह्मणभाग को अवेदत्व और मंत्रभाग को वेदत्व सिद्ध होजाय तो हम केवल मंत्र से उत्तर लिखेंगे और यदि दोनों भाग को वेदत्व हो तो दोनों कर उत्तर लिखेंगे इस प्रतिज्ञा को उसने माना। परन्तु जब पत्र लिखा तो यह लिखा जो कि हमतो मंत्रसंहिता मात्र को प्रमाण मानते हैं तुम जो इससे अधिक वेद मानते हो तिसमें प्रमाण लिखिये। पश्चात् हमने पशपशामह्रा भाष्य प्रमाण से मंत्र ब्राह्मण समुदाय को वेद लिखा फिर उनोंने लिखा जो वेद तीनही हैं चतुर्थ वेदही नहीं इस लिखने से प्रथम पत्र प्रतिज्ञा जो कि चार वेद की करी थी सो त्यागते हुए ऐसे उनके अनापसनाप जवाब को देखकर एक संस्कृत पत्र लिखा तो वो आर्य्यसमाज का उपदेशक भाग गया ॥ फिर डिभाई ज़िला बुलंद शहर में सेठ जानकीप्रसाद और रामशरणादि सनातन धर्म्मावलंबि पुरुषों से चारवेद षट्शास्त्र निरुक्त निघण्टु आदि ग्रन्थ मंगवायकर सत्यार्थ विवेक ग्रन्थ बनाकर। सं० १९४६। अषाढ़ में भीलीभीत में।

उक्त महाशय के बाग़ीचे में पहुंचे और उनसे पुरुषद्वारा सूचित किया जो तुम अब जो चाहो सो विचार करो तुमारी कपट भिक्षुकृत मिथ्या कल्पना खंडन होगयी तब कुछ बोले नहीं पश्चात् सनातन धर्म्मावलंबी लाला प्रभुलाल और लाला देवीप्रसाद पण्डित अयोध्याप्रसादादि की अनुमति से सत्यार्थविवेक का एक महीने तक व्याख्यान हुआ परन्तु नवीन मतावलंबी बुलावा भेजे से भी साधारण रीति से कोई नहीं आए और व्याख्यान से पीछे चातुर्मास्य मेकवत् बोले तो यह शास्त्रार्थ हुआ पत्रद्वारा॥

शुद्धाशुद्ध पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	५	ह्रूपमान	ह्रूयमान
७	१२	म	मं० ६।
८	१४	पर्शुराम	परशुराम
१३	२२	वाक	वाक्
१६	१९	यथावत	यथावत्
१६	२१	सदा	सदा
१७	३	संभूत्यर्थं	सम्भूत्यार्थं
१७	२२	शोभन	शोभन
१९	९	बोधन	वोधन
२०	१७	भी तो	तोभी
२१	२२	व्यावर्त्तक का अभाव होने इस पंक्ति के पूर्व एक पंक्ति भूल गयी है सो यहां लिखी जाती है	क्योंकि गुण द्रव्य में रहता है गुण में नहीं रहता इससे गुण को सगुणता कथन असंगत और निर्गुणता कथन भी असंगत है व्यावर्त्तक का अभाव होने से
२२	७	यह तुमारे सिद्ध	यह सिद्ध
२५	६	विधेय	विधेय
२८	७	भजिते	भजेते
३०	९	परमात्मात्मो	परमात्मा में
३४	२३	वक्तव्यता	वक्तव्यथा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३६	९	इष्ठाम्	इषाम्
३९	१७	काहें	क्रहे
४०	३	प्राप	प्राप्त
४०	१३	पशव्वा	पशावो
५३	१४	ण्ये	राये
५६	२	युग २ म	युग २ में

आर्य्यसमाज कुतर्क खण्डन

पत्रम

ॐ तत्सत

स्वस्तिश्री सर्बगुण युक्तार्य्य समाज पण्डितेभ्यः शोभनबुद्धिरस्तु॥ समाचार यह है जो आप कहते हैं कि सत्यार्थ विवेक के व्याख्यान समय पर भय सें हमको बुलावा भेजा नहीं सो यह कहना ठीक नहीं क्योंकि उस व्याख्यान सुनने वास्ते तो समग्र सहर में बड़े ज़ोर सोर से बुलावा गया था और तुमारे समाज में भी बुलावा गया और एक महाशय सुनने में आने को तयार हुए तुमने रोक दिये ऐसे भी बहुत पुरुष कहते हैं और वो व्याख्यान तो एक मास तक हुआ और तुमारे को क्या किसीने रोका था अबहम अत्यन्त प्रसन्नता से कहते हैं यह शरीर विद्यमान है जो कुछ प्रष्टव्य हो सो पूछें प्रातःकाल से लेकर चार बजे तक आपके विचार का काल है आइए आनन्द पूर्वक बिचार करिये नहीं तो जो आप कहते हैं हमारे प्रष्ण प्रतिवादि करके अवचनीय हैं सो प्रश्न पत्रद्वारा प्रकाशित कीजिये॥ पंडित साधुसिंह आपका शुभ चिंतक। पत्र। लि॰ संबत १९४६ भाद्रशुदि १५।

आर्य्यसमाज पत्र

ओ३म तत्सत परमातमने नमः

सिद्धिश्रीयुत महाशय महाराज पंडित साधुसिंहजी नमस्ते आप स्वामीजी का मत खंडन और मूर्त्तिपूजा प्रतिपादन करते हैं सो स्वामीजी का वेद मत और गोरक्षा धर्म्म या जो सनातन धर्म आर्य्यों का है आप किन प्रमाणों से वेदमत खंडन और प्रतिमा पूजन का मंडन करते हैं। और जो निराकार की मूर्त्ति बनाई जावे तो कितनी लंबी चौड़ी मोटी और किस रंग की होनी चाहिये प्रमाणों सहित उत्तर लिख भेजिये। संवत् १९४६ भाद्रबादि २

ॐतत्सत। सर्वेभ्यः आर्य्यसमाज पंडितेभ्यः शोभनबुद्धि २ स्तु। हे महाशय आपने लिखा। वेदमत का खंडन और प्रतिमा पूजन का मंडन किन प्रमाणों से करते हैं सो हे मित्र यह तुम को भ्रम है क्योंकि हम वेदमत का खंडन नहीं करते किन्तु स्वयं सनातन बेद मतावलंबी हुए ही प्रतिमा पूजन में अवैदिकत्व भ्रम की निवृत्ति वास्ते प्रतिमा पूजन को वैदिकत्त्व प्रतिपादन करते हैं क्योंकि वेदमंत्र तथा निरुक्त से देवता तथा मूलकारण ईश्वर की मूर्त्ति सिद्ध होती है। तथाहि। अथाकाराचिन्तनं देवतानां पुरुषविधाः स्युः। नि० दैवतकाण्ड॥ अ७ पा०२ खं २। भाव इसका यह है देवता चिन्तन से अनंतर देवताओं के आकार का चिन्तन करते हैं। प्रश्न। देवता आकार वाले हैं या निराकार हैं। ५। यदि आकार वाले हैं तो कैसे उनके आकार हैं। उत्तर। पुरुषविधाः स्युः पुरुष शरीराकार देवताओं के शरीरों के आकार हैं इस कहने से यहभी बोध नकिया यदि चन्द्र सूर्य्य अग्नि आदि के आकार बिलक्षण हैं तदापि इनके अभिमानी देवता पुरुषाकार हैं क्योंकि

मंत्रों में पुरुषाकार देवता प्रतीत होते हैं तथाहि।

उरुं नो लोक मनुनेषि विद्वान्त्सर्व ज्योतिरभयंस्व
स्ति। ऋष्वात इन्द्रस्थ विरस्यबाहू उयस्थेयामश
रणा बृहन्ता। ऋ। म०६। अ ४। सू ४, मं ८

मंत्रार्थ — हे इन्द्र आप विद्वान् अर्थात हमारे कर्म को जानते हुए (नः) हमारे को (उरु) विस्तृत लोक को (अनुनेषि) प्राप्त करते हो (सर्वज्योतिः) आदित्यवत प्रकाशमान और (स्वस्ति कल्याणरूप तथा (अभयम्) अभय का स्थान है वो लोक और हे देवते तव (स्थविर) अत्यन्त रिष्टपुष्ट की जो बाहु नाम भुजा हैं वे (ऋष्वा) शत्रुओं के नाशक और (शरणा) नाम आश्रयणीय हैं इससे हम आपको (उपस्थेयाम) उपस्थानक रते हैं। इस मंत्र की इसी प्रकार व्याख्या निरुक्त भाष्य में की है अ ७। पा २ खं २। इस मंत्र में बाहुयुक्त और स्थविर कहने से पुरुषाकारता कहा और कर्मज्ञातृत्व और उत्तमलोक प्रापक त्व कहने से वादी अभिमत ईश्वर से विलक्षण बोध न किया और निरुक्त में भी मनुष्य भिन्न देवताओं को पुरुषसदृश त्व कहा है। पूर्व में

आद्वाभ्यां हरिभ्या मिन्द्रियाह्या चतुर्भिरापड्भिर्हूय
मानः। आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयंसुतः सुमख
मामृधस्कः। ऋ। म०२। अ२। सू १८ मं ४।

मंत्रार्थ — हे इन्द्र यदि आप के दो अश्व होवें अथवा चार होवें वा षट् वा अष्ट वा दश होवें सर्वथा आप इन अश्वों को रथ में नियुक्त कर (सोमपेयम्) सोमपान कर्म के प्रति

आयाहि आगच्छ क्योंकि यह सोम आपके वास्ते सम्पादित है हे सुमख शोभन धनवन् आप रस्ते में (मामृधस्क) किसी शत्रु से संग्राम मत करना शीघ्र आवो। इस मंत्र का व्याख्यान भी निरुक्त भाष्य में इसी प्रकार किया है। नि० अ० ७ पा २ खं २। इस मंत्र में भी मनुष्य के उपकरण सहित होने से मनुष्याकारता सिद्ध होगयी॥ और देवताओं को सर्वशक्ति संपन्नत्व भी निरुक्त में बोधन किया है तथाहि।

आत्मैवैषांरथो भवत्यात्माश्व आत्मायुध आत्मेषव आत्मा सर्वदेवस्य देवस्य। नि० अ ७ पा १ खं ५ दैव कां।

अर्थ — देवताओं का प्रभाव यह है आत्माही देवताओं का अश्वरथ आयुध इषु रूप होता है और सर्वही उपकरण देव देव का आत्मरूप है क्योंकि देवता सत्य संकल्प हैं॥ इस निरुक्त से देवताओं के रथादि में पुरुष के रथादि से बिलक्षणता बोधन की है और देवता के महत्त्व का बोधक मंत्र

रूपंरूपं मघवाबोभवीतिमायाः कृण्वानस्तन्वं परिस्वाम्। त्रिर्यद्दिवःपरिमुहूर्त्तमागात स्वैर्मंत्रैरनृतुपाऋतावा। ऋ० म ३। अ ४ सू ५३ मं ८

(इस मंत्र का व्याख्यान निरुक्त भी देखना)

यद्यद्रूपं कामयते तत्तद्देवता भवति रूपंरूपं मघवाबोभवीतीत्यपि निगमो भवति। नि० अ १० पा २ खं ४।

अर्थ — इन्द्र जिस २ रूप की कामना करता है तिस २ रूपको

प्रतिबंध रहित धारण करके पुनः २ प्रादुर्भाव करता है । क्योंकि माया अर्थात् अपना संकल्प करता हुआ अपनी (तन्वं) नाम शरीराकृति को अनेक प्रकार से प्रकट करता है और देखना- चाहिये तिस देवता का प्रभाव जोकि मुहूर्त्तकाल परिमाण में तीन बार स्वर्ग से अपने मंत्रों करके हूयमान तथा स्तूयमान हुआ आता है और यजमानों के यज्ञों में सर्वदा सोमपान करता है (ऋतावा) ऋतवान् अर्थात् यज्ञवान् है जब ऐसे अचिंत्य प्रभावयुक्त है इससे तिस २ रूपधारण में समर्थ है इस स्थान में मंत्र में मघवा शब्द और निरुक्त में देवता शब्द आर्य्यमान्यौभि मत मनुष्य देवता का वाचक नहीं क्योंकि बहु रूप धारकत्व और द्युलोक से तीन बार आगमन कर्तृक ता मनुष्य में असंभव है ॥ और यह भी निश्चय होगया जोकि मंत्रों करके स्तूयमान देवता अपने भक्तजन के समीप पूजा के आधार यज्ञकुंड वा मृण्मयादि मूर्त्ति में अवश्य आते हैं ॥ और जो तुमने लिखा निराकार की मूर्त्ति बनाई जावे तो कितनी लंबी चौड़ी मोटी और किस रंग की होनी चाहिये ॥ इस कथन से आपका भाव यह है जो वस्तु आपही निराकार है तिसकी मूर्त्ति सर्वथा संभव नहीं जब मूर्त्तिहीन हुई तो लंबापना वा चौड़ापना कहां से होगा क्योंकि जिस देवता की मूर्त्ति शास्त्र प्रतिपाद्य हो तिसकी प्रतिमा भी बनसक्ती है और मूर्त्तिमान् साकार होता है तो निराकार की मूर्त्ति नहीं है तब तिस की प्रतिमा भी नहीं बनसक्ती यह हमने सुहृद् होकार तुम्हारे प्रश्न का भाव ऊहा किया है परन्तु इस तात्पर्य से आपने प्रश्न

का आप सत्यार्थ प्रकाश से समाधान करसक्ते हैं। क्योंकि सत्त्या० समु०७ पृष्ठ २०१ सत्त्यार्थ प्रकाश में बिरोधिगुणों से रहित होने से ईश्वर निर्गुण है और अपने गुणों के सहित होने से सगुण है इसी प्रकार बिरोधि भौतिक मलिन प्राकृत। आकार से रहित होने से वो परमात्मा निराकार और दिव्य स्वसंकल्प रचित आकार सहित होनें से साकार है जब इस प्रकार का निराकार शब्द का अर्थ माना तब तुमारे तात्पर्य्य वाला निराकार शब्द का अर्थ नहीं जो मूर्त्तिमान् को नबोधन करे किन्तु दिव्य अलौकिक मूर्त्तिमान् का बोधक भी निराकार शब्द होसक्ता है जैसे सत्यार्थप्रकाश कार के मत में दिव्य अलौकिक गुण वाले का भी निर्गुण शब्द बोधक है वैसेही निराकार शब्द जब साकार का भी बोधक होगया। निर्गुण शब्द के दृष्टान्त से तो कोई विरोध नहीं निराकार की मूर्त्ति है सर्बथा आकारशून्य का नाम निराकार नहीं अन्यथा यदि सर्ब आकार शून्य का नाम निराकार कहोगे तो सर्ब गुण शून्य का नाम निर्गुण हुए से तुमारे मत का भंग होगा क्योंकि तुमने सर्बगुण शून्य का नाम निर्गुण नहीं माना इस से निराकार शब्द भी साकार का बोधक होसक्ता है सो मूर्त्तिमान है तिसकी प्रतिमा बनसक्ती है जब इस प्रकार निराकारता का अविरोधी साकारता सिद्ध होगयी तो (अकायम) नतस्य प्रतिमा अस्ति। इत्त्यादि श्रुति का समन्वय अच्छी रीति से होगया। भौतिक मलिन काया और भौतिक मलिन प्रतिमा नाम मूर्त्ति बर्ज्जित है यह श्रुति बचनो का अर्थ

है॥ प्रश्न। निर्गुण शब्द का और सगुण शब्द का तो जो कि स
त्यार्थ प्रकाश में अर्थ किया है सोई अर्थ करना चाहिये क्यों
कि सत्य कामत्वादि को शास्त्र प्रतिपाद्य होने से और ईश्व
र में साकारता तो शास्त्र प्रतिपाद्य नहीं इसवास्ते निराकार श
ब्द का सम्पूर्ण आकार रहित ही अर्थ होना चाहिये। उत्तर
यह है मित्र तुमारी बड़ी भारी भूल है क्योंकि साकारता तो मंत्रों
करके प्रतिपाद्य है सो देवताओं में साकारता पूर्व निर्णीत है
वैसेही सर्वकारण बीज स्थानापन्न परमात्मा में भी साकारता
अनन्तावतार बोधक मंत्र करके प्रतिपाद्य है। तथाहि।

रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रति चक्ष
णाय। इन्द्रोमायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ताह्यस्य
हरयः शतादश॥ ऋ। म अ ४ सू ४७ मं १८।

अर्थ ० परमात्मा अपनी शक्ति ओं कर के अनन्तावतारादि
रूप प्रतीत होता है क्योंकि अस्य तद्रूपं प्रति चक्षणाय ०इस
अपने तिस रूप को बोधन के वास्ते १ रूप २ के प्रति अर्थात
अपने संकल्प जनित आकृति से मिलकर तत्सदृश होताहु
आ भाव यह है जब परमात्मा स्वसंकल्प कर दिव्य रूपको
प्रगट करेगा तब अपने भक्त वात्सल्यादि गुण विशिष्ट रूप
का प्रकाश होगा। प्रश्न। ऐसे २ अवतार रूप कितने हैं। उ
त्तर। युक्ताः हि अस्य हरयः शतादश। संसार दुःख हरने से
वे हरि हैं सो रूप निश्चय कर के युक्ता अर्थात संसार र
क्षा में वे रूप नियुक्त हैं संनद्ध बद्ध कर सर्वदा शता नाम
शतानि अनंत हैं और दश अबतार तो अति प्रसिद्ध हैं इस

मंत्र की व्याख्या रूप ब्राह्मण भाग को भी देखना। तथाहि।

अयंवै हरयोऽयंवै दश च सहस्राणि बहूनि चा
नंतानिच। श॰उ॰अ॰४ब्रा॰५।

अर्थ—यह परमात्माही हरि नाम अवतार रूप है वे अवतार दश हैं शत शब्द बहुत्व का बोधक है इससे कहते हैं सहस्र तथा बहुत और अनन्त रूप हैं कुछ गिनती नहीं। प्रश्न। अवतारों के आकार किस प्रकार के हैं। उत्तर। अवतारों के आकार स्तुति व्याज करके अथर्वण संहिता में प्रतिपादन किये हैं। तथाहि

त्वंस्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमारो उतवाकुमारी
त्वं जीर्णोदण्डेनवंचसि त्वं जातो भवसि विश्व
तो मुखः॥ अथर्व। कां १० अनुवाक ४ मं॰२७

अर्थ—हे भगवन् आपही भारती भवानी श्रीरूप अवतारों से वा मोहनी उमा रूप अबतार से स्त्री रूप हैं तथा पर्शराम रामादि अबतारों से पुमान् हैं बामनावतार से कुमार हैं वा सनत्कुमारादि रूप से और कन्यारूप वैष्णवी दुर्गादि रूप से कुमारी हैं और आपही वृद्ध ब्राह्मण रूप होकर दण्ड करके बंचसि) गमन करते हो और आपही कृष्णावतार में विश्व रूप प्रतीति होते हैं। इस मंत्र में सर्वही इतिहास पुराण प्रतिपाद्य अवतारों की सूचना की है इसवास्ते यह मंत्र ही सर्व का मूल है इतने से जो तुम शंका करी थी जो कितनी लंबी चौड़ी मोटी किस रंग की प्रतिमा बनानी चाहिये इस अपनी शंका का समाधान करलेना चाहिये क्योंकि लंबी चौड़ी

रंग आदि का नियम नहीं जिस २ अवतार का जैसा २ आकार वेद मूलक इतिहासादि प्रतिपाद्य है उस २ के प्रतिबिम्ब को धारण करने वाली मूर्त्ति बनानी चाहिये कुछ लंबी चौड़ी का नियम नहीं आगे पूजक की इच्छा जैसी चाहे वैसी बनावे जैसे किसीने अपने पूज्य आचार्य्यादि की मूर्त्ति बनानी होवे तो वो पुरुष रूशनाई वा रंग से वा किसी द्रव्य से लंबी वा छोटी मूर्त्ति बनासक्ता है परन्तु असल मूर्त्ति वो होगी जिसके देखने से प्रत्यक्षप्रमाण वा शब्दकरा निश्चित मूर्त्तिमान् की स्मृति होगी थी वही उसी को प्रतिबिम्ब धारण करने वाली मूर्त्ति कहते हैं। प्रश्न ॥ वेदमंत्र में कोई इतिहास नहीं होता क्योंकि इतिहास पुराण ग्रन्थों में होते हैं और पूर्व उक्त अथर्वण मंत्र में तो यावत् इतिहास हैं वे संपूर्ण ही आगये तो वो मंत्र कैसे होसक्ता है ॥ उत्तर। हे मित्र यह उनकी बड़ी भारी भूल है जो कहते हैं कि मंत्रों में सर्वथा इतिहास नहीं होता क्योंकि बहुत से मंत्र इतिहास गर्भित निरुक्त में व्याख्यान किये हैं और कहीं मुख से ही यास्कमुनि मंत्र को इतिहास गर्भित कहते हैं। तथाहि।

त्रितंकूपे ऽवहित मेतत्सूक्तं प्रतिबभौ तत्र ब्रह्मेहास मिश्रमृङ् मिश्रंगाथा मिश्रंभवति नि० अ ४ पा १ खं ६

अर्थ— कूप में पड़े हुए त्रित नामक ऋषि को (ऋ म १ अ स्रू० १०५) यह सूक्त प्रतीत हुआ वहां ब्रह्म वेदवाक्य इतिहास मिश्रित ऋचायुक्त हैं और गाथा मिश्रित हैं यह भावार्थ का

निरूपण है।

त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये। ऋ॰। म १ अ॰ १५ सू॰ १०५ मं १७

अर्थ—कूप में गिरा हुआ त्रित ऋषि देवताओं को ऊतिनाम रक्षा के वास्ते (हवते) नाम आह्वान करता हुआ यहां यह इतिहास शाट्यायन शाखा में प्रसिद्ध है एकत द्वित और त्रित नामक ऋषि थे वे तीनों एक समय पर मरुभूमि में प्यासकर संतप्त एक कूप को प्राप्त हुए तिन तीनों में से त्रित जलपान करने को कूप में प्रवेश कर जल पी कर उनके वास्ते जल लिया कर उनको दिया तब उन दोनों ने जल पीकर त्रित को कूप में डाल दिया और ऊपर कूप के रथचक्र को देकर त्रित के समग्र धन को लेकर चले गये तब त्रित देवताओं को स्मरण करता हुआ इस सूक्त करके इस प्रकार के इतिहास को इस ऋचा से सूचन किया है इसवास्ते जो कहते हैं मंत्रों में इतिहास नहीं वे अल्पश्रुत हैं इस प्रकार तुमारे प्रश्न को बनाकर के निराकारता साकारता अविरोधी मानकर निरुक्त प्रमाण तथा मंत्र प्रमाण से समाधान किया है और निराकार शब्द का यहही अर्थ मानना चाहिये यदि सम्पूर्ण आकार से रहित का नाम निराकार कहोगे अपना हठ करके तब ब्रह्म के सत् चित् आनंद रूप सूक्ष्म आकार का भी निषेध होने से शून्यत्वापत्ति दोष होगा और विनिगमना विरह से निर्गुण शब्द भी सम्पूर्ण गुणों का निषेधक होजायगा तो तुमारे सिद्धान्त सिद्ध सत्यकामत्वादि भी ब्रह्म में नहीं सिद्ध होंगे और पूर्व उक्त-

अर्थ के सिद्ध हुए से तुमारे प्रश्न का दूसरा भी अभिप्राय प्रतीत होसक्ता है। तथाहि। जो निराकार की मूर्त्ति बनाई जावे तो कितनी लंबी चौड़ी मोटी और किस रंग की होनी चाहिये। इस तुमारे लेख से यह प्रतीत होता है जोकि निराकार की मूर्त्ति तो बन सक्ती है क्योंकि निराकारता को साकारता का अविरोधी होने से परन्तु तिसके लंबे चौड़े मोटे और रंग में संशय है जैसे किसी ने शास्त्रद्वारा कुण्ड में अग्निहोत्र की कर्त्तव्यता निश्चय करके यह प्रश्न किया कि कुण्ड कितना लंबा चौड़ा होना चाहिये वहां उस प्रश्नकर्त्ता को अग्निहोत्र के कर्त्तव्य में संशय नहीं तद्वत् तुमने जब प्रतिमा के लंबे मोटे चौड़े में प्रश्न किया तो निराकार की प्रतिमा में वा तिस के पूजन में तुमको संशय नहीं तब तो तुमारे मुख से प्रतिमापूजन सिद्ध होगया और मोटे लंबे रंग में संशय निवर्त्तक प्रकार हमने पूर्वविचार से निश्चय करादिया है क्योंकि जहांइस प्रकार की कुतर्क होती है सो विचार से ही निवृत्त होती है जैसे पूर्व उक्त कुण्ड विषय में संशय केवल विचार से निवृत्त होता है यदि कोई वाक्य नमिले तो, यदि वाक्य भी मिले तदापि संशय निवृत्ति वास्ते विचार कर्त्तव्यही है यदि यह अभिप्राय तुमारे प्रश्न का नहो तो प्रश्न असंगत है किन्तु ऐसा प्रश्न चाहिये था निराकार की मूर्त्ति कैसे बनती है वा प्रतिमा कैसे बनसक्ती है सो ऐसा प्रश्न तो तुमने किया नहीं इसवास्ते तुमको भी प्रतिमापूजन मंतब्य है वा प्रश्न वाक्य को असंगत मंतव्य है। और जो कहा स्वामीजी का वेद मत और गोरक्षा धर्म्म था सो मत वा धर्म साधारण है क्योंकि

आस्तिकमात्र का वेदमत और गोरक्षा धर्म है उलटा गोरक्षा ध
र्म तो जैन पार्सिकादि साधारण है और यदि वास्तव विचार करें
तो तुमारा गोरक्षा धर्म भी केवल जाल फैलाने वास्ते है क्योंकि
जैसे तुम संसार का उपकारक मानकर गौ को रक्षणीय कहते हो त
ब यदि कोई बंध्या गौ संसार का उपकारक नहो तो उसको अ
रक्षणीय कहोगे इससे यह भी व्यावर्तक नहीं और वेदमतक
हेका है यदि एक भाग छोड़दिया और अब क्रम से दूसरा भाग
भी छोड़ोगे यदि किंचित् वेद के मानने से वेदमत हो तो तुमा
रे से अधिक जीवमात्र की अहिंसा करने वाले जैनों का भी वे
दमत कैसे नहीं और आपने जो कहा वेदमत का खंडन किन
प्रमाणों से करते हो सो देखना चाहिये। जो हम ऐसी २ अवैदि
कशास्त्र विरुद्ध वार्त्ताओं का खंडन करते हां। तथाहि। यह ॐकार
शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इसमें अ उ और
म् तीन अक्षर मिलकर एक (ओम्) समुदाय हुआ है इस एक
नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं जैसे अकार से बिराट
अग्नि और विश्वादि उकार से हिरण्यगर्भ वायु और तैजसादि
मकार से ईश्वर आदित्य और प्रज्ञादि नामों का वाचक और
ग्राहक है। उसका ऐसाही वेदादि सत्यशास्त्रों में स्पष्ट व्याख्या
न किया है। यह सत्यार्थप्रकाश के प्रारम्भ में ओंकार का।
व्याख्यान किया है वहां प्रथम ग्रास में मक्षिका पातवत प्रा
रम्भ में ही असंगत है क्योंकि ओंकार प्रविष्ट अकारादि मा
त्रा विराडादि नामके वाचकवा ग्राहक हैं इस प्रकार का व्याख्या
न यदि वेदादि शास्त्र में लिखा है तो कोई भी वाक्य उस महा

शय को लिखना योग्य था और लिखा नहीं । और लिखे क
हां से इस अर्थ का प्रतिपादक वेदवाक्य की तो क्या कथा है
पुराणवाक्य भी तो नहीं जिसमें प्रणवस्थ अकारादि वर्ण वि
ष्ण्वादि नाम के वाचक और ग्राहक हैं इसप्रकार का अर्थ हो
इसवास्ते प्रथमही उपासना तथा अद्वैतात्म बोधक प्रणवव्या
ख्यान के लोप वास्ते गप्पसप्प हांका है और (यो ऽचति अच्य
ते ऽगत्यङ्ग त्येति सो यमग्निः) यह अग्नि शब्द की व्युत्पत्ति
लिखी है वहां अगि धातु से बिना और धातु से व्युत्पत्ति प्रद
र्शन असंगत है क्योंकि व्याकरण से अग्नि शब्द केवल अ
गिधातु से बनसक्ता है और अञ्चु आदि धातु से बणना क
ठिन है और गायत्र्यर्थ व्याख्यान में (यो दीव्याति दीव्यते वा
सदेवः) यह व्युत्पत्ति देव शब्द की लिखी है वहां दीव्यते
यह व्युत्पत्ति प्रदर्शन असंगत है क्योंकि देव शब्द क
र्तरि अधिकार पठित पचादि गण में प्रविष्ट है और कर्त्ता अ
र्थ में केवल दीव्यति प्रयोग होसक्ता है दीव्यते नहीं क्यों
कि धातु को परस्मै पदी होने से और जीव को परिच्छिन्नत्व
और मोक्ष में रागद्वेष सहितत्व इत्यादि हमारे खण्डनों को
देखकर यदि कोई कहे तुम वेदमत खण्डन करते हो तब
तो जीव परिच्छिन्नत्वादि वा पूर्व उक्त प्रणव व्याख्यानादि
को वैदिकत्व उपपादन करे यदि प्रणव में बहुत नाम की वा
चकता वा ग्राहकता ही विशेषता हो तो नाम शब्द अथवा
शब्द शब्द वा वाक शब्द इनको ओंकार से भी अत्यन्त उत्तमता
होना चाहिये। इससे यह विशेषता केवल मनः कल्पित है

यथा श्रुतिही ओंकार का व्याख्यान कर्त्तव्य है इतने विस्तार पूर्वक बिचार से उत्तर लिखने से हे मित्र हमारा भाव यह है जो कि आप यथावत् सनातन यास्क मुनि के अनुसार भाव वेद का समझ कर अपने भ्रम को निवृत्त करो और यदि आप इस पत्र के उत्तर का इरादा करें तो क्रम से यथावत् लिखना जोकि पत्रद्रष्टा महाशय आपकी प्रज्ञा की श्लाघा करें। भाद्र बदि ६ सम्बत् १९४६।

आर्य्यसमाज

ओ ३ म्॥ श्रीयुत् विद्वद्वर्य साधुसिंह योग्येषु। नमस्ते। पत्र आपका आया वृत्तान्त ज्ञात हुआ आपने देवता विषय में लिखा है कि देवता साकार हैं और इन्द्रादि देवता हैं इसके उत्तर में बड़ा विस्तार होगा क्योंकि पौराणिक देवताओं को तेतीस कोटि गणना करते हैं जो उनसे पूछा जाय कि उनके क्या क्या नाम हैं तो चुप साध जायँगे यद्यपि इस विषय में विस्तार भय से हम कुछ लिखना नहीं चाहते हैं तथापि कुछ लिखना युक्त है। वेद में दिव्यगुणों से युक्त को देवता कहा है और शतपथ में लिखा है कि (विद्वांसोहिदेवाः) और जो इन्द्रादिक परमेश्वर के नाम हैं उन नामों से पृथक् २ देवता कल्पना करना वेद सें प्रतिकूल है

इन्द्रं मित्रम० तदेवाग्नि स्तदादित्य स्तद्वायु स्तदु चन्द्रमाः। तदेवशुक्रं तद्ब्रह्मताआपः सप्रजापतिः

और ईश्वर निराकार की प्रतिमा पूजन के विषय में आ

प लिखते हैं कि ईश्वर सगुण और निर्गुण है और निर्गुण हो
ने से निराकार है यह स्वीकार है पर सगुण होने से ईश्वर सा
कार है इससे उसकी प्रतिमा बनाकर पूजन करना वेद विहि
त है परन्तु वेदमंत्र का कोई प्रमाण नहीं दिया कि इस वेद
मंत्र में ईश्वर निराकार साकार प्रतिपादन किया है इससे उस
की प्रतिमा बनाकर पूजना चाहिये न कोई ऐसी प्रामाणिक यु
क्ति निकाली कि जिससे निराकार ईश्वर साकार सिद्ध होता
और अनेक वेदमंत्रों में ईश्वर निराकार निरूपण किया है
और साकार होना उसका निषेध किया है। यथा।

सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्य्याथातथ्यतो ऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः। य० अ० ४० मं० ८। एकोदेवः सर्वभूतेषुगूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षीचेता केवलो निर्गुणश्च॥

ईश्वर की स्तुति

वह परमात्मा सब में व्यापक शीघ्रकारी और अनन्त बलवान् जो शुद्ध सर्वज्ञ सब का अंतर्यामी सर्वोपरि बिराजमान सनातन विद्या से यथावत् अर्थों का बोध वेदद्वारा कराता है यह सगुण स्तुति अर्थात् जिस २ गुण से सहित परमेश्वर की स्तुति करना वह सगुण है (अकायं) अर्थात् जो आकार वा शरीर धारण नहीं करता जिसमें क्लेश दुःख अज्ञान कभी न

हीं होता इत्यादि जिस २ रागद्वेषादि गुणों से पृथक् मानकर परमेश्वर की स्तुति करना है वह निर्गुण स्तुति है । इत्यादि वेदमंत्रों से ईश्वर के सगुण निर्गुण गुणों की स्तुति की पर सगुण से साकार कहीं निरूपण नहीं किया और जो सगुण शब्द से निराकार ईश्वर को साकार सिद्ध करना चाहते हैं वह किसी प्रकार से सिद्ध नहीं करसक्ते हैं क्योंकि सगुण और निर्गुण ये गुण एक ईश्वर निराकार के हैं यह नहीं हो सक्ता कि निर्गुण से निराकार और सगुण से साकार यह कल्पना किसी प्रकार युक्त नहीं होसक्ती है न इसका कोईप्रमाण है न आपने कोई इस विषय में मंत्र का प्रमाण लिखा कि ईश्वर निर्गुण से निराकार और सगुण से साकार इससे जो प्रथम आपने निर्गुण से निराकार ईश्वर की प्रतिमा का नहोना स्वीकार किया है इसी प्रकार आप सगुण से निराकार स्वीकार करें क्योंकि सगुण निर्गुण दोनों गुणों करके एक निराकार ईश्वर का ही निरूपण सब सच्छास्त्रों में किया है कहीं ऐसा नहीं लिखा है कि निर्गुण से निराकार और सगुण से साकार और ऐसा असंभव मानने से बेदमंत्रों में बड़ा विरोध पड़जायगा इसको कोई विद्वान् नहीं प्रमाण करेगा। इससे आप सगुण निर्गुण का विचार यथावत कीजियेगा। यद्यपि साकार दिव्य पदार्थ सगुण निर्गुण हैं पर वे निर्गुण होने से निराकार नहीं होसक्ते सदा साकारही बने रहेंगे और कहने में भी साकार ही आवेंगे।

नतस्यप्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः। य०

अ० ३२ मं० ३

अन्धंतमः प्रविशंतिये ऽसम्भूति मुपासते। ततोभूय इवते तमोयउसं भूत्त्या थं रताः २ केनोपनिषद।

जो सब जगत में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा परिमाण सादृश्य वा मूर्त्ति नहीं है जो असम्भूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःख सागर में डूबते हैं और सम्भूति जो कारण से उत्पन्न हुरा कार्य्यरूप पृथिवी और भूत पाषाण वृक्षादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं वे उस अन्धकार से भी अधिक अंधकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःखरूप नर्क में गिर के महाक्लेश भोगते हैं और अग्नि आदि शब्द बहुत दुरुस्त हैं धात्वर्थादि से आप इस विषय में भाष्यादि देखकर आक्षेप करें और अग्नि शब्द (अञ्चुगति पूजनयोः) इस धातु से बना है आप (अगिगतौ) धातु से लिखते हैं इससे ऐसे विषय में बिचार कर लिखना चाहिये जिस शब्द में शंका हो उसे खूब बिचार कर लिखा करें नहीं तो नालिखना चाहिये यदि अगिधातु से बने तो इदितोनुम् इससे नुमागम होना चाहिये तो कैसा रूप होगा अग्नेकिम् बहुना विज्ञेषु। भाद्रपद कृष्णाष्टमी। ८। सं० १९४६

आर्य्यसमाज पण्डितेभ्यः शोभन बुद्धि रस्तु

इस आपके पत्र को देखकर हे मित्र बड़ा आश्चर्य्य होताहै क्योंकि इस पत्र से थोड़े से बुद्धिमान् को भी देखकर यह निश्चय होगा जो तुमारे को हमारे पत्र का लेशमात्र भी अर्थप्रतीत नहीं हुआ परन्तु हम तो तुमारे पत्र का उत्तर लिखेंगे जो कि कदाचित तुम यथार्थ वेदार्थ को समझ जावो आपनेजो लिखा कि पौराणिक तेतीस कोटि देवता गिन्ती करते हैं यदि उनके नाम पूछें तो मौन कर जायँगे सो यह वार्त्ता आपने बिना प्रसंग से लिखी है क्योंकि यहां तो वेद वेदाङ्ग का विचार है कुछ पौराणिक मत का विचार नहीं। यदि वेदाङ्ग मत से देवताओं की संख्या पूछें तो अति प्रसिद्ध निरुक्त में लिखी है उससे देवताओं की आप गिनती करसक्ते हैं तथाहि। तिस्रएव देवताइति नैरुक्ता अग्निः पृथिवी स्थानो वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः सूर्य्योद्यु स्थानस्तासां माहाभाग्यादेकैकस्या बहूनिना मधेयानि भवन्ति। नि० दैवतकां०॥ अ०७ पा०२ खं०१।

इस निरुक्त में तीन स्थान में देवताओं की स्थिति कहने सेओर इनको माहाभाग्य कहने से और एक२ के बहुत नाम कहने से विज्ञान यहां देवता शब्दार्थ नहीं इसवास्ते देवताओं की गिनती प्रसिद्ध है और इनके अनन्त नाम हैं एक२ के इससे अनन्त तात्पर्य्य से तेतीस कोटि भी कहसक्ते हैं औरजो पूर्वपक्ष में निरुक्त प्रमाण से देवताओं की पुरुषाकारता सिद्ध करी है वहां भी देवता शब्दार्थ विज्ञान नहीं क्योंकि-

विद्वानों को तो पुरुषाकारता प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्ध है तिस
को निरुक्त से क्यों सिद्ध करते इससे वहां भी विद्वानों से भि
न्नही देवता हैं और ऋग्वेद मंत्र से इन्द्र को। स्थविरत्व वा
हुयुक्तत्त्वादि कहने से वहां इन्द्र शब्द ईश्वर का बाचक न
हीं प्रतीत होता और फिर द्वि चतुरादि अश्वयुक्त रथ कर सो
मयज्ञ में आगमन वोधन और संग्राम कर्त्तृत्व बोधन से नि
राकार ईश्वर का वोधक वहां इन्द्र शब्द नहीं और फिर निरु
क्त प्रमाण से देवताओं के आत्मा को रथादि रूप बोधन से
सत्य कामता बोधन किया वहां भी देवता शब्द विद्वान् का
वोधक नहीं। और फिर ऋग्वेद के मंत्र से सत्य कामता औ
र मुहूर्त्त काल प्रमाण से तीन वार आगमन मंत्रों से आवा
हन करे इन्द्र का बोधन किया है वहां भी मघवा शब्द ई
श्वर का वाचक नहीं क्योंकि निराकार ईश्वर को व्यापक
होने से किन्तु देवता का बाचक है और फिर निरुक्त प्रमा
ण कर काम्यमान रूपधारकत्त्व देवता को कहा है और पूर्व
उक्त मंत्रप्रमाण भी निरुक्त में उद्भावन किया है अब देखना
चाहिये वहां भी देवता शब्द विद्वान् का वाचक नहीं कि-
न्तु देबता का बाचक है इस स्थान में इतने प्रमाणों की तुम
ने उपेक्षा करी है सो प्रमाण क्या अपने अर्थ को नहीं सि
द्ध करते सो तो कदापि नहीं इन प्रमाणों को कौनसी युक्ति
से हटाते हैं सो प्रकाशित कीजिये। और जो आपने लिखा
कि (विद्वांसो हि देवाः) यह शतपथ की श्रुति है सो यथार्थ
है परन्तु यह श्रुति कुछ देवताओं का निषेधक नहीं किंतु

विद्वानों से भिन्न देवताओं का साधक है। तथाहि। श्रुति का यह अर्थ है जो कि देव बुद्ध्या विद्वांस उपासनीयाः परिचरणीया यदि देवता नहीं होंगे तो किन की बुद्धि करके विद्वान पूजनीय होंगे और तुमारे अभिप्राय से देवताओं का निषेध करें तो (वाग्वैब्रह्म) शतपथ बृह० उप० अ०६ब्रा०१। यह श्रुति भी शतपथ में पठित है तो ब्रह्म का निषेध करदेना चाहिये क्योंकि ब्रह्म तो इस श्रुति करके वाग् सिद्ध होगयी इससे यहां भी ब्रह्म को वाक्यान्तर में प्रसिद्ध होने से निषेध का असंभव है इसवास्ते इस श्रुति का भी भाव यह है जोब्रह्म बुद्धि करके वाग् उपासनीय है इस प्रकार जब देवता वाक्यान्तर प्रसिद्ध हैं तो उनका निषेध आप कैसे करसक्ते हैं और जो आपने कहा (जो इन्द्रादि परमेश्वर के नाम हैं०) (इन्द्रंमित्रं) इत्यादि (और तदेवाग्निः) इत्यादि वाक्य भी प्रमाण कहा वहां यद्यपि भाव और है परन्तु यदि तुमारे कहे से ईश्वर के इन्द्रादि नाम मानें तो भी इन्द्रादि देवताओं का निषेध नहीं होता क्योंकि जैसे तुमारे काल्पित सिद्धान्त से ही अग्नि अप् शब्द ईश्वर का बाचक प्रकरणवश से हुआ भी तो भौतिक अग्नि जल रूप अर्थ का अभाव नहीं कहसक्ते तद्वत् यदि कहीं प्रकरण वश से इन्द्रादि शब्द ईश्वर बोधक हुआ तो भी इन्द्रादि देवताओं का लोप नहीं होसक्ता जैसे अग्नि अप शब्द के वाच्यार्थ का लोप नहीं होता और जो कहा सगुण कहने से तुम ईश्वर को साकार कहते हो यह वार्ता तो हमारे पक्ष में नहीं है आप के खियाल में पक्ष का

व्याख्यान आया नहीं क्योंकि सगुणा पृथिवी सगुण माकाशम् इत्यादि रीति के शब्द प्रयोग होने से यद्यपि सगुण शब्द साकार निराकार साधारण का वाचक है तथापि हमने तो सत्यार्थ प्रकाश में प्रसिद्ध निर्गुण सगुण शब्द के व्याख्यान को दृष्टान्त रखकर निराकार और साकार शब्द का व्याख्यान किया है। और आपने कहा ईश्वर की साकारता में कोई मंत्र प्रमाण नहीं लिखा तो क्या आप (रूपंरूपं प्रतिरूपः) इत्यादि मंत्र अनंत अवतार का साधक तथा त्वंस्त्री इत्यादि मंत्र परमात्मा के अवतारों के आकार का साधक हमने लिखे हैं उनकी चटनी बना के खागये वा पत्र के बीच से प्रेत उड़ा लेगये और अकायम् तथा नतस्य प्रतिमा इन श्रुतियें का भी अर्थ लिख दिया है अकायम् नाम भौतिक काया वर्जित है और तिसकी पृथिवी भूतकार्य्य अन्न रसादि शुक्र शोणित जन्य मलिन प्रतिमा नाम मूर्त्ति नहीं है किन्तु शुद्ध सत्त्व प्रधान दिव्य मूर्त्ति है परमेश्वर की यह श्रुति पदों का अर्थ है जरा बुद्धिरूप नेत्र से पत्र को देखना और जो कहा (सगुण निर्गुण दोनों गुणों कर के एक निराकार ईश्वर का ही निरूपण सब सच्छास्त्रों में किया है) इस कहने से तो अत्यन्त बुद्धिमत्ता आपने प्रगट करी क्योंकि सर्व पत्र में सगुण और निर्गुण ईश्वर को लिखते लिखते अब गुणों को सगुण और निर्गुण कहने लगे सो गुणों को यद्यपि निर्गुणता न्यायदर्शन की रीति से कह सकते हैं परन्तु सगुणता कथन सर्वथा असंगत है व्यावर्त्तक का अभाव होने से और जो (यद्यपि साकार दिव्य पदार्थ

सगुण निर्गुण हैं पर वे निर्गुण होने से निराकार नहीं होसक
ते हैं सदा साकारही बने रहेंगे और कहने में भी साकारहीआ
वेंगे) यह तुमने लिखा है वहां यह विचारणीय है जो दिव्य
पदार्थ दूसरे के विरोधी गुणोंसेरहित होने से निर्गुण कहेजाते
हैं तब तो विरोधी मलिन आकार से रहित होने से निराकार
कहने में क्या प्रतिबंध है परन्तु निर्गुण शब्द से वा निराका
र शब्द से कहे जावो वा न कहे जावो) तुमारे वाक्य से वो
दिव्य पदार्थ सदा साकार बने रहते हैं यह तुमारे सिद्ध हु
आ तो वो कौन पदार्थ हैं यदि ईश्वर भिन्न साकार वस्तु स
दा रहने वाली है तो साकार को नित्यत्व प्राप्त होगा और तु
मारे मत का भंग होगा क्योंकि तुमारे मत में साकार वस्तु नि
त्य मानी नहीं यदि ईश्वर के अन्तरभूत हैं सो पदार्थ
"तब ईश्वर को साकारता का निषेध करना असंगत है
इसवास्ते तुमारे पक्ष का विध्वंसकतो तुमाराही लेख है॥
और (अन्धंतमः) इत्यादि वाक्य केनोपनिषद् का लिखा
सो लिखने में तो अत्यन्त पाण्डित्य को वोधन किया
यदि तुमने केन गुरुमुख द्वारा पढ़ा सुना होता तो ऐसेभ्र
मजाल में कबी न फस्ते क्योंकि केन के तृतीयखण्ड में
उमा महेश्वर का अवतार तथा अग्नि आदिक देवता स्प
ष्ट प्रतिपादन किये हैं तब उनको यदि जानते तो अनाप
सनाप न बकते और जो इस मंत्र का अर्थ लिखा है जो
असम्भूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण कीब्र
ह्म के स्थान में उपासना करते है वे अन्धकार अर्थात्

अज्ञान और दुःख सागर में डूबते हैं और संभूति जो कार
ण से उत्पन्न हुए कार्य्यरूप पृथिवी आदि भूत पाषाण और
वृक्षादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं।
वे उस अंधकार से भी अधिक अंधकार अर्थात महामूर्ख
चिरकाल घोर दुःख रूप नरक में गिरके महाक्लेश भोगते
हैं। सो यह अर्थ तो अनर्थ प्रलाप है। तथाहि॥ इस स्था
न में यह विचारणीय है जो ब्रह्म के स्थान में इतना अर्थ
कौनसे पद समुदाय का है इसका संस्कृत वाक्य यह है
ब्रह्मणः स्थाने वा ईश्वरस्य स्थाने सो इस प्रकार का पद स
मुदाय किसी पूर्व मंत्र में वा इस मंत्र में नहीं तो केवल
अनर्थ प्रलाप है॥ मंत्र के अक्षरों से तो केवल यह अर्थ
निकलता है जो असंभूति तथा संभूति की उपासना करता
है सो नरक में पड़ता है सो यहां उत्पत्ति रहित का नाम अ
संभूति और उत्पत्तिमान् का नाम संभूति जब ऐसा अर्थ हु
आ तो ब्रह्म भी उत्पत्ति रहित होने से असंभूति शब्द का
अर्थ है तब ब्रह्म की उपासना से भी नरक होना चाहिये
तुमारे अर्थ में और माता पिता आचार्य्य विद्वान् अतिथि तु
मारे सिद्धान्त में भी पूजनीय उपासनीय हैं तो उनकी उपा
सना से भी तुमको नरक होना चाहिये इससे केवल मंत्र के
अर्थ का प्रलाप है और यदि च तुमारे अर्थ को ही मानें तो
ब्रह्म के स्थान में इसका क्या अर्थ करते हो। ब्रह्म का नि
वास स्थान॥१॥ अथवा ब्रह्म का उपासना स्थान।२। वा ब्रह्म
रूप स्थान।३। वहां प्रथम पक्ष तो सर्वथा असंगत है।

क्योंकि ब्रह्म का निवासस्थान व्यापक होने से सर्व प्रपंच है प्रकृति से लेकर कार्य्यवर्ग पर्य्यन्त,, तो उस प्रकृत्यादिरूप ब्रह्मस्थान में प्रकृत्यादि भावना सर्वथा सिद्ध है उपासना करता ही कौन है जिसको नरक होगा ऐसी बुद्धि बावले पुरुषों की है वेही नरक को प्राप्त होंगे और यदि द्वितीय पक्ष कहो तो असंगत है क्योंकि ब्रह्म की उपासना स्थान सनातन धर्मावलम्बिओं के मत में प्रकृत्यादि रूप प्रपंच है तिस में प्रकृत्यादि उपासना कोई नहीं करता क्योंकि ज्ञात अधिष्ठान में अज्ञात वस्तु उपासनीय होती है ज्ञातवस्तु उपासनीय नहीं और यदि ब्रह्मरूप स्थान कहें तो केवलमिथ्या प्रलाप है क्योंकि प्रतिमा पूजकों की तो यहमर्य्यादा है जोब्रह्मबुद्धि करके वो प्रतिमा उपासनीय है व्यासस्त्र प्रमाण से। तथाहि

ब्रह्मदृष्टि रुत्कर्षात। शा अ ४ पा १ सू ।५।

यहां यह विचार है जो कि वाग्वै ब्रह्म आदित्यो ब्रह्म) इत्यादि प्रतिक उपासना में प्रतीक की दृष्टि ब्रह्म में कर्त्तव्य है वा ब्रह्मदृष्टि प्रतीक में कर्त्तव्य है इस संशय की निवृत्ति वास्ते कहते हैं जोकि प्रतीक मेंब्रह्म दृष्टी कर्त्तव्य है क्योंकि ब्रह्म को उत्कर्ष होने से इस प्रकार — जब ब्रह्मदृष्टि से प्रतीक उपास्य होगये तो सर्वत्र ब्रह्म को उपास्यत्व सिद्ध होगया॥ प्रश्न। वागादि प्रतीक ब्रह्मदृष्टि से उपास्य तो श्रुति सिद्ध हैं परन्तु प्रतिमा आदिप्रतिक ब्रह्मदृष्टि से उपास्य हैं इसमें कौन प्रमाण है। उत्तर। इसमें तो मंत्र प्रमाण ^है जिन तीन मंत्रों में से एक काटा है। तथाहि

अन्धंतमः प्रविशंतिये ऽ सम्भूति मुपासते।

ततोभूय इवते तमोयउसंभूत्या थं रताः। य०
सं० अ० ४० मं० ९।

अर्थ — इस स्थान में यह जानना नहिं निन्दा निन्दितुं प्रवृत्ता अपितु विधेयंस्तोतुम् (यह न्याय है निन्दा वाक्य) जो है सो कुछ निन्दन करने में नहीं प्रवृत्त हुआ किन्तु विधेय वस्तु की स्तुति करने कुं प्रवृत्त हुआ है यहां कारण और कार्य्य वस्तु की उपासना का समुच्चय विधेय है इस वास्ते इस नवम मंत्र में एक एक उपासना की निन्दा करते हैं कुछ निन्दा में तात्पर्य्य नहीं यदि निन्दा में तात्पर्य्य होता तो दशम मंत्र में एक २ का फल बोधन करना व्यर्थ होता। तथाहि।

अन्यदेवाहुः सम्भवा दन्यदाहुर सम्भवात्
इति शश्रुमधीराणां येनस्तद्विचि चक्षिरे। य०
सं० अ ४० मं १०।

अर्थ — सम्भवात अर्थात् ब्रह्मदृष्टि करके कार्य्य उपासना से औरही ऐश्वर्य्यप्राप्ति रूप फल कहते हैं। तथा औरही असंभवात् अर्थात् ब्रह्मदृष्टि करके प्रधान उपासना से प्रकृति लय रूप फल कहते हैं इति, यह वार्त्ता धीर पुरुषों की इम सुनते हुए जो धीर (नः) हमारे वास्ते (तत) कार्य्य कारण उपासना को विचि चक्षिरे व्याख्यान करते हुए इस मंत्र में समुच्चय की कारण एक २ की सफलता कही जैसे कृषि वा वाणिज्य यदि एक २ सफल हैं तो दोनों के समुच्चय से महाफल होसकता है और यदि एकअनिष्फल होवें तो

समुच्चय से महाफल होता नहीं तैसे यदि प्रत्येक सफल हुई कार्य्य कारण उपासना तो समुच्चय इनका महाफल हेतु होसकता है। तथाहि।

सम्भूतिञ्च विनाशञ्च यस्तद्वेदोभय७ सह विनाशेन मृत्युंतीर्त्वा ऽसंभूत्या ऽमृतमश्नुते।
य० सं० अ ४० मं० ११।

अर्थ— इस मंत्र में पुनरुक्ति परिहार वास्ते तथा पूर्व मंत्रोंकी अनुसारता से सम्भूति शब्द के आदि में लुप्त अकार का उच्चारण जानना तब यह अर्थ हुआ असंभूति कारण वस्तु को विनाशकार्य्य वस्तु को सह नाम एक काल में उभय नाम दोनों को वेद नाम उपासना जो करता है सो विनाशेन अर्थात् ब्रह्मदृष्टि करके कार्य्य उपासना करता हुआ अनैश्वर्य्य लक्षण मृत्यु को तर कर असंभूत्या अर्थात् ब्रह्मदृष्टि से अथवा अहं ग्रह करके कारण उपासना करके अमृतं अर्थात क्रम मुक्ति को अश्नुते प्राप्त होता है इस प्रकार जब इन समग्र मंत्रों करके सफल प्रतिमा पूजन सिद्ध हुए को नहीं मानते तो वो केवल बावले श्वान कर दंशित हुए बौरा रहे हैं नहीं तो वेद प्रतिपाद्य अर्थ को ज़रूर मान लेते। यह तुमारे नवीन प्रश्नरूप आक्षेप खण्डन पूर्वक तिस प्रश्न का उत्तर वेदमंत्र से दिया है और ओंकार व्याख्यान का मूल निर्णेतव्य है तथा जीव के परिच्छिन्नत्व में वेदवाक्य निर्णेतव्य है और मोक्ष में जीव को प्रेम द्वेषादि सहित होने में वेदवाक्य निर्णेतव्य है क्योंकि तुमारा तो वेद मत

है वेद बिना यह सम्पूर्ण वार्त्ता कैसे मानी जावें और तुम इन विषयों में चुप करगये इससे जाना जाता है जो तुमको भी इतनी वार्त्ता मिथ्या प्रतीत होगयी नहीं तो कुछ भी लिखते और जो आपने लिखा कि अग्नि शब्द बहुत शब्द है धात्वर्थादि से आप इस विषय में भाष्यादि देखकर आक्षेप करें और अग्नि शब्द अञ्चुगति पूजनयोः धातु से बना है आप अगि गतौ धातु से लिखते हैं। इदितोनुम् इससे नुमागम होना चाहिये तो कैसा रूप होगा इससे ऐसे विषय विचारकर लिखना चाहिये। इस लेख से हे महाशय हमको बहुत आपने सावधान किया परन्तु आप भी सावधानता से लिखना अगि धातु से ही अग्नि शब्द बनता है। तथाहि।

अङ्गेर्नलोपश्च। उणादि। पा० ४ सू० ५१ वी

ज्याज्वरिस्योर्निः॥ ४८॥

इस पूर्व सूत्र से नि प्रत्यय की अनुवृत्ति करने से पूर्वसूत्र का यह अर्थ है अगिधातु से नि प्रत्यय हो और धातु के नकार का लोप होजाय तब अग्नि शब्द बनगया अब अञ्चु से जैसा बनता है सो प्रकार लिखिये) और देव शब्द की व्युत्पत्तिस्य दीव्यते) इस प्रयोग की भी उपपत्ति लिखिये। जो गुरु से अनृण होजाओ यदि तुमारे लिखित मंत्रों का सिद्धान्त अर्थ यास्क व्यास ऋषि अनुसार लिखें तो उन मंत्रों से ही तुमारा मुख बंद होसकता है। तथाहि।

इन्द्रंमित्रं वरुणमग्नि माहुरथोदिव्यः ससुपर्णो गरुत्मान्। एकंसद्विप्रा बहुधावदन्त्यग्निं

यममातरिश्वानमाहुः। ऋ मं १ अ २२ सू १६४ मंत्र ४६।

इममेवाग्निं महान्तमात्मान मेकमात्मानं बहुधामेधा विनो वदन्तीन्द्रं मित्रं वरुणमग्निं दिव्यं च गरुत्मन्तं दिव्यो दिवि जो गरुत्मान् गरणवान् गुरुवात्मा महात्मेति वायस्तु सूक्तं भजते यस्मै हविर्निरुप्यते ऽयमेवसो ऽग्निर्न्निपातमेवैते उत्तरे ज्योतिषी एतेन नामधेयेन भजिते। नि अ७ पा ४ खं ५। टी० का०॥

अर्थ~इन्द्रं मित्रं, इत्त्यादि मंत्र वादि मत में निराकार परमात्मा के इन्द्रादि नाम का वोधक है परन्तु यह कल्पना यास्क मुनि विरुद्ध है क्योंकि यास्क मुनि के मत में इस मंत्र में अग्नि देवता पृथिवी स्थान वाला सर्ब भोक्तृभावापन्न हविः प्रक्षेपाधिकरण यमादि रूप से स्तूयमान है तब मंत्र का यह अर्थ हुआ अग्नि को इन्द्र मित्र वरुणरूप कहते हैं और जो दिव्य सुपर्ण गरुत्मान अर्थात सर्ब कर स्तवन योग्य आदित्य है सो भी अग्निही है और मेधावि एकं सत् नाम सन्तं अग्निं) एक विद्यमान अग्नि को बहुधा कथन करते हैं इस स्थान में यास्क मुनि का भाव यह है शक्ति वृत्ति कर अग्नि शब्द वोध्य पृथिवी स्थान वाला अग्नि देवता है और गौणी वृत्ति कर विद्युत मध्य स्थान देवता और द्यु स्थान देवता सूर्य्य भी वोध्य है। यस्मैहविर्निरुप्यते ऽयमेवसो ऽग्निः) इस यास्क बचन का भाव भी देखना चाहिये इससे इस मंत्र से निराकार परमात्मा के बहुत नाम

नहीं सिद्ध होसकते यदि यहां निराकार प्रत्यक्षादि का अ
विषय प्रतिपाद्य इष्ट होता तो इममेवाग्निम् ऐसे इदम् श
ब्द का प्रयोग यास्कमुनि नकरते और (तदेवाग्निः) य०
सं० अ ३२ मं १। इत्यादि मंत्र का अर्थ।

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात्। श।
अ १ पा ४ सूत्र २३।

इस व्याससूत्र के अनुसार यदि करें तो सोई परमात्मा
मूल कारण अग्नि १ आदित्य २ वायु ४ चंद्रमा ४ शुक्र ५
ब्रह्म ६ आप ७ प्रजापति ८ रूप हैं क्योंकि प्रकृति अर्थात्
उपादान कारण को कार्य्य से अभिन्न होने से अग्नि आ
दि रूप से परमात्मा की स्थिति में तात्पर्य्य है। प्रतिज्ञा
श्रुति तथा दृष्टान्त श्रुति की अनुपरोधात् अर्थात् संगति
होने से ब्रह्म जगत का उपादान है तथा निमित्त कारण है
यह सूत्र का अर्थ है और (सपर्य्यगात्) इत्यादि श्रुति
में स्वयंभवति उत्पद्यते स स्वयम्भू ऐसे अर्थ करने सेसा
कारता सिद्ध होती है इसीवास्ते शाश्वतीभ्यः समाभ्यः
अर्थान् कर्त्तव्य पदार्थान् व्यदधात् विभागं कृतवान् यह
उत्तर मंत्रभाग संगत होता है क्योंकि ब्रह्मा प्रजापति रूप
होकर जो बहुत काल जीवों करके कर्त्तव्य पदार्थों का वि
भाग करता हुआ इसवास्ते अकायम न तस्य प्रतिमा अस्ति
इत्यादि श्रुति का हमारे अर्थ में ही तात्पर्य्य है अथवा
व्यावहारिक कायादि सत्त्वेपि पारमार्थिक कायादि नहीं
हैं इस अर्थ में श्रुति बचनों का तात्पर्य है इसीवास्ते।

द्वेवावब्रह्मणोरूपे मूर्त्तंचैवा मूर्त्तञ्च। इ ३
इत्यादि वृहदारण्यक बचन भी संगत होसकता है इससे
तुमारे वाक्यों से ही तुमारा मत खंडित होता है तुमतो व्यर्थ
ही बावले श्वान दष्ट पुरुषवत् अनाप सनाप बोलते हो इ
स प्रकार के वेद के भाव को समझो तो निराकारता का और
साकारता का कोई विरोध नही एक तरफ दृष्टि करना और
दूसरी तरफ़ से छोड़देना यह दो नेत्र वाले से भिन्न का धर्म
है। और एको देव इत्यादि श्वेताश्वतर उपनिषद् का मंत्र
भी परमात्मात्मों केवलत्व का बोधक तुमारे जीव परमा
त्मा के वास्तव भेद का बाधक है। भाद्रवदि ९ स० १९४६

भाद्रवदि ९ सं० १९४६

ओ३म् तत्सत्। श्रीयुत महाशय पण्डित साधुसिंहजी नम
स्ते। आपने लिखा कि देवताओं की गिन्ती आप करसकते
हैं सो आर्य्य लोग देव एक परमात्मा को मानते हैं जिसकी
कदापि प्रतिमा नहीं होसकती। तथाहि।

नतस्यप्रतिमा अस्ति यस्यनाम महद्यशः।

अब विरुद्ध इस मंत्र के मंत्र नहीं होसक्ता जो नहीं तो वेद
में महा शंका प्रगट होगी और जो वेद में स्तुति और प्रार्थना
के मंत्र हैं उनसे ऐसा जानना कि परमेश्वर साकार है वह
सर्वथा अनर्थ है। देखिये।

सनोबन्धुर्जनिता सविधाता धामानि वेदभुवना
नि विश्वायत्रदेवा अमृतमानशाना स्तृतीय
धामन्नध्यैर यन्त। य ३२। १०। तेजोऽसिते

जेमयिधेहि वीर्य्यमसि वीर्य्यं मयिधेहि बलम
सिबलं मयिधेहि ओजो ऽस्योजो मयिधेहि म
न्युरसि मन्युं मयिधेहि सहो ऽसि सहो मयिधेहि
य १६।६ विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता
विधाता परमोतसंदृक् तेषामिष्टानि समिषा म
दन्ति यत्रा सप्त ऋषीन् परएक माहुः। य १७।
२६। विभूरसि प्रवाहणः वन्हिरसि हव्य वाह
नः श्वात्रो ऽसि प्रचेता: तुत्थो ऽसि विश्ववेदाः
उशिगसिकविः अङ्घारि रसिबम्भारि अवस्यू
रसि दुवस्वान् शुन्ध्यूरसि मार्जालीयः सम्राड
सि कृशानुः परिषद्यो ऽसि पवमानः नभो ऽसि
प्रतक्वामृष्टो ऽसि हव्य सूदनः ऋतधामासि
स्वर्ज्योतिः समुद्रो ऽसि विश्वव्यचाः ऽअजो ऽ
स्येकपात् अहिरसि बुध्न्यः वागस्यैन्द्र मसिस
दो ऽसि ऋतस्यद्वारौ मामासन्तापतम अध्वना
मध्व पते प्रमातिरस्वस्तिमे ऽस्मिन् पथिदेव या
नेभूयात्। य ५।३१।३२।३३।

जो इन मंत्रों से परमात्मा को साकार मानना निरर्थक है क्यों
कि जो परमात्मा निराकार है सो साकार अनादि से सादि और
अजन्मा से जन्मवान् और निरवयव से सावयव और अनंत
से सान्त और सर्ब व्यापकत्व से एक देशी ठहरा जैसे प्राण
प्रतिष्ठा हुई तो जन्मवाला और प्रतिमा के आरम्भ से सादि
और किसी समय में खंडन होने से सान्त परमेश्वर निश्चय

हुआ सो ऐसा कदापि नहीं होसक्ता और जो कोई और देव
ता हैं जैसे श्रीराम और कृष्णादि उनके वंश में सूर्य्यवंशी
और चन्द्रवंशी हैं उनकी पूजा करना चाहिये। और ओ३म्
की अर्थ जैसे मनु महाराज ने करे हैं तैसे स्वामीजी ने करे हैं
और अग्नि शब्द अञ्चुगति पूजनयोः अग अगि इण गत्य
र्थक धातु हैं इन से सिद्ध होता है

भाद्रपद वदि १० सं० १९४६

ओं तत्सत्। परमात्मने नमः॥ हे मित्र तुम सर्वथा हमारे पत्र
के समझने तथा उत्तर लिखने में असमर्थ हुए भी जो पत्र
लिखते हैं यथा कथंचित् अनापसनाप सो इस वास्ते यदि
हमारा पत्र रुक जायगा तो हमारी पराजय समझी जायगी सो
हे महाशय पत्र के नरुकने से जय और पत्र के रुकने से प
राजय यह बहुत स्थूल बुद्धि शास्त्र संस्कार शून्य पुरुषों की
समझ है परन्तु पराजय हेतु-निग्रह स्थान में जो आय जाता
है तिसकी पराजय और जो निग्रह स्थान में नहीं आता
उसकी जय समझी जाती है यह गौत्तम मुनि ने न्याय
दर्शन में लिखा है अब यहां देखना जो। कि आपअ
पनी उक्ति से ही निग्रह स्थान में आरहे हैं इस प
त्र में आप लिखते हैं जो कि आर्य्य लोक देव एक परमा
त्मा को मानते हैं और पूर्व पत्र में (विद्वांसोहि देवाः) इस
श्रुति से देवता विद्वानों को माना है इन्द्रादि देवताओं का
निषेध किया है जैसे इन्द्रादि देवता का इस वाक्य से नि
षेध किया है वैसेही परमात्मा रूप देव का भी निषेध।

होना चाहिये यदि परमात्मा वाक्यान्तर में प्रसिद्ध है तिसका
निषेध असंगत है तब तो इन्द्रादि देवता भी वाक्यान्तर प्रसिद्ध हैं
तिनका निषेध भी असंगत है इससे जो हमने श्रुति का अर्थ किया है
वोही होना चाहिये देवता बुद्धि करके विद्वान पूजनीय हैं इसी अर्थ
में श्रुति का तात्पर्य्य है और जो कोई यह कहता है जो परमात्मा दे
वदेव है इसी वास्ते तिसको महादेव कहते हैं तो इस कहने से भी
परमात्मा से भिन्न देवता सिद्ध होते हैं हम कब परमेश्वर को देवदेव
वा महादेव का निषेध करते हैं वा तिसकी बराबर किसीको मान
ते हैं किन्तु तिससे न्यून इन्द्रादिक देवताओं को मंत्र निरु
क्त प्रमाण से सिद्ध करते हैं और जब परमात्मा को देवदेव
वा महादेव माना तो क्या देवताओं का वा अल्प देवन का
निषेध होसकता है कदापि नहीं यदि देव वा अल्पदेव
नहोवेंगे तो देवदेव वा महादेव कैसे कहा जायगा जैसे
राजा वा अल्पराजा के अभाव में राजराज वा महाराज न
हीं कहाजाता प्रकरण में वार्त्त यह है जब पूर्वपत्र में देव
ता विद्वान माने तो बहुत से देवता मानचुके अब एक देव
परमात्मा को कहने से प्रतिज्ञा हानि १ और प्रतिज्ञान्तर रू
प २ निग्रह स्थान होगया और नतस्य इत्यादि श्रुति की
करी व्यवस्था को न खंडन करके पुनः इस श्रुति को लि
खने से अप्रतिभा रूप निग्रह स्थान है ३ क्योंकि उत्तरकी
अप्रतीति होने से और साकारपक्ष मेंइसमंत्र विरोध के दूर करे
भी फिर विरोध कथन असंगत है और वेद में शंका को
न प्रकट करके वेद में शंका कथन मिथ्या प्रलाप है।

और जो यह कहा जो वेद में स्तुति और प्रार्थना के मंत्र हैं उनसे ऐसा जानना कि परमेश्वर साकार है वह सर्वथा अनर्थ है १ इस कथन से तो सर्वथा अपनी अज्ञता प्रकट करी क्योंकि यदि स्तुति प्रार्थना मंत्रों से साकारता कथन अनर्थ है तो निराकारता और निर्गुणता वा सगुणता कथन भी असंगत है निर्गुणस्तुति से वा सगुणस्तुति से क्योंकि तुमारे कथन से तो स्तुति प्रार्थना मंत्र किसी अर्थ के साधक नहीं तो वेद में क्या व्यर्थ प्रलाप है क्या आपकी बुद्धिमत्ता है क्या कहना है इसवास्ते अपने निराकारता और निर्गुणतादि साधक स्तुति को सार्थक मानोगे ज़रूर तो साकारता साधक स्तुति ने क्या पाप किया है यदि वेद में स्तुति निरर्थक होगी तो वेद का प्रलाप व्यर्थ होगा इससे स्तुति जिस २ गुण से करी जाती है सो २ गुण अवश्य होता है अन्यथा निराकारतादि को जलाञ्जलि देकर बैठो क्यों किसी का बिधि निषेध करते हो इससे जो निराकार शब्द की व्यवस्था हमने करी है सो तुमको भी दुराग्रह छोड़कर मन्तव्य है यदि निराकार शब्द सम्पूर्ण स्थूल सूक्ष्म आकार का निषेध करे तो ब्रह्म को शून्यत्वापत्ति दोष होगा सो तुमने नतो दोष का उद्धार किया और न हमारे अर्थ का खंडन किया इससे अज्ञानरूप निग्रह स्थान है ४ क्योंकि पुनः २ कथित अर्थ के अज्ञान से और मंत्र जो लिखे सोभी तुमारे किसीवी अर्थ के साधक नहीं और हमारे पक्ष के विघातक नहीं और हमारे पत्रवत् उनका अर्थ वक्तव्यता सो लिखा नहीं इससे यह भी प्रतीत

होता है जो तुम मंत्रों का अर्थ नहीं जानते सो अनुपासित गुरुओं को अर्थाज्ञान उचित ही है और इन मंत्रों से ही तुमारा मत भंग होता है। तथाहि।

पद। सः नः बन्धुः जनिता सः विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा यत्र देवाः अमृतम् आ न शानः तृतीय धामन् अध्यैरयन्त॥

अर्थ— सो परमात्मा हमारा बन्धु अर्थात् स्नेह से उपकार करने वाला है और हमारा जनिता जनक (विधाता) पालक है सो (विश्वा) सर्ब (धामानि) धामों को तथा भुवन निवास स्थानों को (वेद) जानता है जिस तृतीय धाम में अर्थात् स्वर्ग में वर्त्तमान देवता अमृत को (आनशानः) भक्षण करते हुए (अधि) उपरि, (ऐरयन्त) प्राप्त होते हुए अब देखना चाहिये यदि यह स्तुति किसी अर्थ को नसिद्ध करे तो परमात्मा को जनकत्व पालकत्व सर्ब भुवन ज्ञातृत्व भी नहीं होना चाहिये यदि सिद्ध करें तो अमृत भक्षक तृतीय धाम वृत्ति देवताओं को तथा तृतीय धाम कोभी ज़रूर सिद्ध करेगी इससे आर्य्याजी का लिखा हुआ ही मंत्र आर्य्याजी के पक्ष का खण्डक है।

पद। तेजः असि तेजः मयि धेहि वीर्य्यम् असि वीर्य्यम् मयि धेहि बलम् असि बलम् मयि धेहि ओजः असि ओजः मयि धेहि मन्युः असि मन्युम् मयि धेहि सहः असि सहः मयि धेहि

अर्थ— इस मंत्र से सर्बात्मा रूप से परमात्मा की स्तुति का

रते हैं हे भगवन् आप तेज १ वीर्य्य २ बल ३ ओज ४ मन्यु ५ सह ६ रूप हैं क्योंकि सर्वात्मा होने से सो हे भगवन् तेज आदि मेरे में स्थापन करो मन्यु नाम क्रोध का और सहो नाम उदक का है उदक उपलक्षित सारांश रस मेरे शरीर में स्थापन करो यह प्रार्थना है इस प्रार्थना से भी परमात्मा को तेज आदि रूप सिद्ध होता है अन्यथा मंत्र का वाधितार्थ बोधक होने से व्यर्थ प्रलाप होगा।

पद। विश्वकर्मा । विमना आत् । विहाया धाता वि धाता परमा उत सम् दृक तेषाम् इष्टानि सम् इषा म् अदन्ति यत्र सप्त ऋषीन् परे एकम् आहुः

अर्थ — विश्वकर्मा, मध्यस्थान देवता वायु आत् एव । विमना अर्थात् विशिष्टमन एव विहाया महान् धाता सर्व ब्रह्माण्ड का धारण कर्त्ता विधाता सर्व का पालक उत अपि परमा उत्कृष्ट संदृक् दर्शन वाला भाव यह है इस मंत्र में वायु सूत्रात्मा स्तूयमान हैं अन्तरिक्ष में स्थित श्रेष्ठ मनवाला व्यापक सर्व का धारक और पालक है श्रेष्ठ ज्ञानवाला, यत्र जिसमें वर्त्तमान सब देवता तथा ऋषि (तेषां समिषा मिष्टानि अदन्ति) तेषां समिषां नाम तिन अन्नों के मध्य इष्ट अन्नों को भक्षण करते हैं और जिस पर देव में सप्तऋषियों को एक भाव प्राप्त कहते हैं अर्थात् सप्तऋषि सूक्ष्म समष्टि वायु की उपासना करके तद्भाव को प्राप्त होरहे हैं यह मंत्र भी वायु देवता की स्तुति करता है इसीवास्ते निघण्टु (अ ५ खं ४) विश्वकर्मा मध्यस्थान देवता लिखा है।

अब देखना चाहिये जो मंत्र देवता के विद्वेषी आर्य्याजी देवता के निषेध तात्पर्य्य से लिखते हैं उन्हीं से ब्रह्मभिन्न देवता सिद्ध होता है क्या आश्चर्य्य है आर्य्याजी तो मंत्र अर्थ जानतेही नहीं जो मंत्र को समझ कर लिखें और यह कहें जो आर्य्यलोक एक परमात्मा को देवता मानते हैं तो कहना चाहिये निरुक्त निघण्टुकार यास्कमुनि उनकी समझ में आर्य नहोगा जो परमात्मा से भिन्न देवता मानता है उनके नवीनही अपने काल्पित आर्य्य हैं मिथ्यर्थ प्रकाश की दलदल भूमिका में धसे हुए।

पद। विभू असि प्रवाहणः वान्हिः असिहव्य वाहनः श्वात्रः असि प्रचेताः तुत्थः असि विश्ववेदाः। उशिक् असिकविः अङ्घारिः असि बम्भारि अवस्यूः असि दुवस्वान् शुन्ध्यूः असि मार्जालीयः सम्राट् असि कृशानुः परिषद्यः असिपवमानः नभः असि प्रतक्वा मृष्टःअसि हव्यसूदनः ऋतधाम असि स्वर्ज्योति।

अर्थ – हे भगवन् आप (प्रवाहणः) प्रकृष्ट बहने वाले जलरूप हैं और विशेष करके सर्वत्र होनेवाले हैं इससे विभू हैं। और हव्यवस्तु को प्राप्त करने वाले आप वन्हिरूप हैं। और हे भगवन् आप (श्वात्र) धनवान् (प्रचेताः) वरुण रूप हैं और (विश्ववेदाः) सम्पूर्ण के ज्ञाता (तुत्थ) अग्निरूप हैं और उशिग दीप्तिमान् कवि हैं और (अङ्घारि) कमल रूप और बम्भारि अति भ्रमण शील भ्रमररूप हैं

और (दुवस्वान्) परिचरणयुक्त (अवस्यूः) रक्षण शील हैं। और आपही शुन्ध्यू सर्व के शोधक हैं और (कृशानु) अग्निवत् (मार्जालीयः) काया के शोधक हैं और (कृशानु) अग्निवत् प्रकाशमान (सम्राट) चक्रवर्त्ति राजा हैं (पवमान) वायुरूप परिषद् में साधु हैं और (प्रतका) प्रकृष्ट स्तेन अर्थात् सर्व के गुप्त करने वाले आप नभ नाम आकाशरूप हैं और इव्यवस्तु प्रक्षेपाधिकरण (मृष्ट) शुद्धरूप आप अग्नि हैं और (ऋतधाम) सत्य वाधन के आश्रय हैं और स्वर्गमें ज्योतिरूप हैं आप भाव यह है सर्वरूप आपही हैं।

पद। समुद्रः असि विश्वव्यचाः अजः असि एकपात् अहिः असि बुध्न्यः वाग् असि ऐन्द्रम् असि सदः असि ऋतस्य द्वारौ माम आसन्ता आप्ततमः अध्वनाम् अध्वपते प्रमा तिर स्वस्ति मे अस्मिन पथि देवयाने भूयात्

अर्थ— हे भगवन आप। (विश्वव्यचाः) विश्वं बहुरूपं। व्यनक्तीति (विश्वव्यचाः) अपने में बहुरूपों को प्रगट करने वाले समुद्रवत् विस्तृत हैं जैसे समुद्र अपने में तरंग बुद्बुदे अपने से अनन्य स्वाभाविक प्रगट करता है तद्वत् आप भी अपने बहुरूप अवतार प्रगट करते हैं। प्रश्न। यदि अनेक अवतार हुए तो परमात्मा को जन्मवत्त्व होना चाहिये उत्तर॥ अजोसि एकपात) एक पाद रूप हे भगवन आप यद्यपि माया सहित हैं तथापि त्रिपाद आपका रूप अज सर्वथा जन्म प्रतीति शून्य है सोई श्रुत्यन्तर में भी कहाहै

पादो ऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि
य० सं० अ ३१ मं० ३।

और आप अहिर्बुध्न्य रूप मध्यस्थान देवता हैं। इसीवास्ते
निघण्टु अ० ४ खं० ५ में अहिर्बुध्न्या नाम मध्यस्थान देवता
कहा है वहां इन्द्र का नाम अहिर्बुध्न्य है। हे भगवन् आप
ही परा १ पश्यन्ति २ मध्यमा ३ वैखरी ४ वागरूप हैं और इ
न्द्र की समारूप भी आपही हैं और हे भगवन् (ऋतस्य)
धन वा सत्य के द्वारा उपाय मेरे को प्राप्त होवें और हे (अ
ध्वपते) देव यान मार्ग के अधिष्ठाता आप आप्ततम परमा
प्त रूप (मा अध्वनां प्रतिर) मेरे को मार्ग को प्राप्त कर उ
त्तीर्ण करो और हे भगवन् इस देवयान मार्ग में मेरे को (स्व
स्ति) कल्याण हो अब देखना चाहिये आर्य्याजी के लिखे
मंत्रों से सर्ब देवता ईश्वरावतार और त्रिपाद स्थान में अज
त्व वा मायाकृत जन्म के होते भी वास्तव अजत्व सिद्ध हो
गया नेत्रहीन आर्य्याजी को इन मंत्रों में कुछ भी न प्रतीत हु
आ केवल निरर्थक जानकर आर्य्या अनाप सनाप बकती
है। और जो मूर्त्ति के प्राणप्रतिष्ठादि से जन्मादिक हैं सो तो
सर्बथा तुच्छ है क्योंकि मूर्त्ति के जन्मादि से मूर्त्तिमान् के
जन्मादि प्रत्यक्षादि प्रमाण विरुद्ध हैं इससे सर्बथा उपेक्ष
णीय है और जो राम कृष्णादि वंश को पूजनीय चापत्ति क
हा सो भी तुच्छ है क्योंकि (नराणाञ्च नराधिपः) इत्यादि
वाक्य से यदि अन्य नराधिप भी पूजनीय हुए तो उनकी
क्या कथा है और जो वस्तु मात्र को वेदासिद्धान्त वादी व्या

स सूत्र प्रमाण से ब्रह्मबुद्धि कर पूजनीय कहता है उसके मत में वेद सिद्धान्ता ज्ञानी आर्य्यों की शंका कैसे प्रतिष्ठा को प्राप्त होगी और जो

योऽन्यां देवता मुपास्तेन सवेद यथा पशुरेव थं सदेवानाम्

इतनी श्रुति को लिखकर देवताओं को अपूजनीय कहता है सो तो प्रकरणाज्ञानी उसी श्रुति से अपने मत का विनाशक है तथाहि।

यरावंवेदाऽहंब्रह्मास्मीति सइदथं सर्व्वं भवति तस्यहन देवाश्चना भूत्याईशत आत्माह्येषां संभवति। अथयोऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योहमस्तीति न सवेद यथापशु रेवथं सदेवानां यथा हवै बहवः पशवो मनुष्यं भुञ्जुरेव मेकैकः पुरुषोदेवान् भुनक्त्ये कस्मिन्नेव पशावादीयमानेऽप्रियं भवति किमु बहुषु तस्मादेषां तन्नाप्रियं यदेतन्मनुष्या विद्युः। वृह। उप०। अ ३। ब्रा ४। कां०१०।

अर्थ—जो अधिकारी चतुष्टय साधन सम्पन्न गुरुशास्त्र द्वारा ऐसे जानता है (अहंब्रह्मास्मि) सो सर्वात्मा भाव को प्राप्त होता है तिसके अभूति नाम मोक्षप्राप्ति के वास्ते (इन अपि) देव भी (ने शते) नहीं समर्थ होते (हि) जिस कारण से सो विद्वान (एषाम्) इन देवताओं का आत्मा होजाता है और जो अन्य देवता की उपासना करता है यह उपास्य

अन्य है और अहम् अन्य हूं सो नहीं जानता सो क्या है मनुष्यों के अश्वादि पशुवत् सो देवताओं का पशु है जैसे बहुत से पशु मनुष्यों के उपकारक होते हैं वैसे एक २ पुरुष ज्ञान से रहित भेद दर्शी देवताओं का उपकारक है एक पशु के नाश में मनुष्य को क्लेश होता है और बहुत नाश में तो अत्यन्तही क्लेश होता है इस वास्ते देवताओं को मनुष्यों का ब्रह्मज्ञान प्रिय नहीं क्योंकि मनुष्य पशुरूप सर्बस्व का विघातक होने से। अब देखना चाहिये यह लेख कुछ देवताओं का निषेधक नहीं किन्तु ब्रह्मज्ञान रूप अद्वैतात्म बोध की प्रशंसा करता है यदि देवता का निषेध कहोतो एक देव साधारण सर्ब देवताओं का निषेध करेगा और आर्य्य मानी तो इस अद्वैतात्म बोध को मानेंगे तो ईश्वर जीव का वास्तव भेद मानना असंगत होगा। इस वास्ते इस वाक्य काभावही और है तुम इसका समन्वय नहीं करसकते तुमने तो पूर्व उत्तर भाग तथा बीच से छोड़कर लिखा है सो पूर्व उत्तर भाग और प्रकरण से बिना कैसे अर्थ का बोध करसकता है। प्रश्न। यदि परमेश्वरका अवतार रूप जन्म मानोगे तो अनादि से सादि और अनन्त से सान्त और व्यापक से एक देह वृत्ति होने से एकदेशी होना चाहिये। उत्तर। जब जन्म वा एक शरीर वृत्ति होने से यह दोष है तब जीव के जन्म को निर्विबाद होने से अनादि से सादि और अनंत से सांत होना चाहिये और य आत्मनि तिष्ठन् यस्यात्मा शरीरम्) इस श्रुति से परमा

त्मा को जीवरूप शरीर में वृत्ति होने से एक देशी होना चा
हिये और व्यापकत्व का भंग होना चाहिये और जो ओं
कार की अकारादि मात्रा विश्वादि नाम का ग्राहक है।
और वाचक है इस अर्थ को मनु बचनानुसारी कहा है
सो कथनमात्र से मनु वचनानुसारी नहीं होसकता यदि
कोई मनु बचन इस अर्थ का बोधक होता तो ज़रूर स
त्यार्थ प्रकाश में लिखा जाता यदि वो महाशय भूला है
तो तुम लिखो अब भी प्रणव के असद्व्याख्यान का ख
ण्डन दूर होसकता है परन्तु केवल मुख की वार्त्ता है मनु
जी श्रुति पारगामी उपनिषद् विरुद्ध व्याख्यान कैसे लिखें
गे और पूर्वपत्र में तुमने अगि धातु से अग्नि शब्द की सि
द्धि का निषेध करके अबचार धातु अञ्चुअग अगि इण इ
नसे बनता है इस लेख से प्रतिज्ञा संन्यास रूप निग्रह स्था
न है ५ और प्रतिबादी के मत का स्वीकार होने से मतानुज्ञा
रूप निग्रह स्थान है ६ और अञ्चु आदि धातु से अगि धा
तुसे हमारीसिद्धिवत नसिद्धकरनेसे अननुभाषण रूप निग्रह स्था
न है ७ और ईश के वाक्य को केन का लिखने से अज्ञा
नरूप निग्रह स्थान है ८ और प्रथम पत्रस्थ प्रश्न वाक्य
को तुमारे अर्थ की संभावना से निरर्थक होने से अपार्थक
रूप निग्रह स्थान है ९ इस प्रकार इतने पराजय के हेतु
ओं का नसमाधान कर यदि अनापसनाप पत्र लिखोगे।
तो एक दो चार की तो क्या कथा है यदि आप सहस्र प
त्र की भी लिखें तो हमको अनादरणीय हैं हां यदि आप

अपने दूषण उद्धार कर पत्र लिखें तो जवाब यथायोग्य लिखा जायगा परन्तु कहां से लिखोगे जो तुमारे लिखित मंत्रों से ही तुमारा स्वकपोल कल्पित मत खंडन होता है और जो सन्ध्योपासनादि प्रतिपादक पुस्तकों में तथा संस्काराविध्यादि पुस्तकों में नहीं लिखा प्रतिमापूजन इससे नित्य नैमित्तक कर्म से बाह्य होने से अवैदिक अस्मार्त्त स्वकपोल कल्पित है यह कहा है सो भी तुमारी भूल है क्यों कि तुमारी लिखित पुस्तक प्रमाण नहीं होसकती क्योंकि तुम तो मतवाद में बद्ध भ्रान्त हो वेद स्मृति प्रमाणों से प्रतिमा पूजन को वैदिकत्वादि सिद्ध होसकता है ॥ तथाहि ॥

अरंदासो नमीढुषे कराण्यहं देवाय भूर्णये ऽ नागाः । अचेतयदचितो देवो ऽ अर्य्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति । ऋ० मण्डल । ७ अनुवाक ५ सूक्त ८६ मंत्र ७ ॥

पद । अरम् दासः न मीढुषे कराणि अहम् देवाय भूर्णये अनागाः अचेतयत् अचितः देवः अर्य्यः गृत्सम् राये कवितरः जुनाति ।

अर्थ । इस स्थान में न शब्द के अर्थ की मंत्रों में व्यवस्था करनेवाले निरुक्त को समझकर इस मंत्र की व्यवस्था करना ।

प्रतिषेधार्थीयः पुरस्ता दुपचारस्तस्ययत्प्रति षेधाति । उपमार्थीय उपरिष्टा दुपचारस्तस्ययेे

पमिमीते । नि० अ १ पा २ खं १ ।
अर्थ = यत्प्रतिषेधति तस्य पुरस्तात् प्रतिषेधार्थी योन शब्द इत्युपचारः । येनोप मिमीते तस्यो परिष्टात् उपमार्थी योन शब्द इत्युपचारः । यह अन्वय है निरुक्त वाक्य का । भावार्थ यह है जिस अर्थ को निषेध करते हैं तिसके वाचक पद से यदि पूर्व नकार होतो प्रतिषेध अर्थ वाला होता है मंत्र में और जिसकी उपमा देई जाती है तद्वाचक पद से यदि पश्चात् हो नकार तो उपमा अर्थ में होता है यह बहुधा मंत्रों में नियम होता है।
मंत्रार्थ । अनागा अहं भूर्णये मीढुषे देवाय अरंकराणि दासोन दास इव । भावार्थ । निषिद्धाचरण वर्जित में दासवत् देव के अर्थ अलंकार करता हूं । (भूर्णयेमीढुषे) बहुतसी धन की वृष्टि करनेवाले हैं वो देव यथा स्वामी का सेवक स्रक चंदन वस्त्रादि से अलंकार करता है तद्वत् में भी धन की बहुत वृष्टि करनेवाले देव के अलंकार करता हूं इस मंत्र में दास की उपमा अहं शब्दार्थ कर्त्ता को दीगई है और दास शब्द से परे नकार है इससे उपमार्थ में है इस मंत्र में देव में अलंकार करना प्रतीत होता है सो निराकार में अलंकारादि असंभव हैं इससे प्रतिमारूप आधार में हीं परमात्मा देव के अलंकारादि हैं । प्रश्न इस मंत्र में तो आचार्य्यादि देवता मानकर वहांही अलंकार कहा है कुछ प्रतिमा में अलंकार नहीं कहा इस प्रश्न का अपने आपही वेद भगवान् उत्तर लिखते हैं ।

(अचेतयद् चितोदेवो अर्य्यः) अर्य्य स्वामी देव अचेतनों को चेतन करता है अपने जीवरूप से प्रवेश करके (रायेगर्त्सं कावितरो जुनाति) इस प्रकार (राये) धन की प्राप्ति वास्ते। (गर्त्सं) प्राण के भी प्राणरूप देव को (कावितर) अत्यन्त बुद्धिमान् (जुनाति) आश्रय करता है । इस मंत्र में प्रतिमा में परमेश्वर पूजन को काम्य कर्मता प्रतीत होती है और आचार्य्य यद्यपि पूजनीय है परन्तु अचेतनों को वो चेतन नहीं करसकता जीवरूप से प्रवेश कर इससे इस मंत्र में प्रतिपाद्य नहीं।

जन्मकर्मतपोयोगा स्तयोस्तव च पुष्कलाः तास्यांलिङ्गे ऽर्चितोदेव स्त्वयार्चायां युगेयुगे ॥ १ ॥ सर्बरूपंभवंज्ञात्त्वा लिङ्गेयो ऽर्चयतिप्रभुम । आत्मयोगाश्चतस्मिन् वै शास्त्रयोगाश्च शाश्वता ॥ २ ॥ सर्वभूतभवंज्ञात्वा लिङ्ग मर्चयतियः प्रभोः। तस्मिन्नभ्यधिकां प्रीतिंकरोति वृषभध्वजः ॥ ३ ॥ द्रोणपर्व्व भारत।

अर्थ — यह द्रोणपर्व भारत के श्लोक हैं इनमें भी प्रतिमा पूजन को काम्य कर्मता प्रतीत होती है। वहां यह प्रसंग है जब द्रोण मरगये तब अश्वत्थामा ने कृष्णार्जुन पर अनेक अस्त्र छोड़े तब भी वो वैसेही रहे तब अश्वत्थामा के संशय निवृत्ति वास्ते व्यासजी कहते हैं। हे ब्राह्मण तू अपनी विद्या में संशय मत कर क्योंकि जन्म कर्म तप-

तुमारे तथा तिन दोनों के पुष्कल हैं॰ परन्तु तिन दोनों ने लिंग में देव अर्चन किया है और तैंने अर्चा में युगाश्म पूजन किया है इसवास्ते सर्वरूप महादेव को जानकर जो लिङ्ग में प्रभु का पूजन करता है तिसमें आत्मयोग तथा निरन्तर शास्त्रयोग होते हैं सर्बभूत रूप महादेव को जानकर जो प्रभु के लिंग का पूजन करता है तिसमें अत्यन्त अधिक प्रीति महादेव करता है॥

नित्यंस्नात्वा शुचिः कुर्य्याद्देवर्षि पितृतर्पणम्। देवताभ्यर्चनंचैव समिधा धान मेवच।
मनु अ २ श्लो।१७६।

अर्थ—(नित्य) सर्बदा स्नान करके पवित्र होकर देव ऋषि पितरों का तर्पण करे और देवताओं का पूजन करके। (समिधाधान) अग्निहोत्र करे इस मनु वचनमें नित्यकर्म प्रतिजन प्रतीत होता है अब देखना चाहिये जो वेद और स्मृति प्रतिपादित कर्म में नरक कहते हैं उनका हमारा वेद मत है यह कहना कभी सत्य नहीं होसकता। इति आर्य्य समाज कुतर्क खण्डनम

इति

विज्ञापन

विदित हो जोकि सत्यार्थ विवेक सं॰ १९४६ कार्त्तिक शुदि १५ पर्य्यन्त) तयार होगा जिस ग्रंथ में यह विषय है। प्रथम मंगला चरण निरूपण और मोक्षनिरूपण प्रतिज्ञा और दयानन्द स्वीकृत मुक्त जीव का स्वरूप कथन और तिसमें दूषण निरूपण ॥ २॥ और पातंजल मत से पंचक्लेश निरूपण और मुक्त को भौतिक स्थूल शरीर संबंधाभाव साधक श्रुत्यर्थ निरूपण करके दयानंद कल्पित अर्थ खण्डन ॥ ३॥ और दयानन्द लिखित व्यास सूत्रार्थ निरूपण पूर्वक दयानन्दाभिमत अर्थ खण्डन और व्यास सूत्रों को स्वतः प्रमाणत्व निरूपण और दयानन्दाभिमत जीव स्वरूप खण्डन् ॥ ४॥ दयानन्द लिखित जीव स्वरूप निरूपण करने वाले न्याय वैशेषिक सूत्रार्थ का वात्स्यायन भाष्य से निरूपण और दयानन्दाभिमत् अर्थ में सर्वथा सूत्रभाष्य का असमन्वय निरूपण ॥ ५॥ श्रुतिवचन लेख पूर्वक पातंजल कणाद गौतम सूत्र और वात्स्यायन भाष्य इन सब की जीवस्वरूप निरूपण में एक वाक्यता निरूपण ॥ ६॥ जीव परमात्मा भेद को औपाधिकत्व और वास्तवाभेदत्त्व की प्रतिज्ञा पूर्वक मंत्रादि करके जीव को परमेश्वरांशता निरूपण और ब्रह्मा विष्णु रुद्र को भी परमेश्वरांशता निरूपण ॥ ७॥ नमः पद को अन्नादि वाचकता ग्रहण करके रुद्र को देवत्त्वाक्षेप पूर्बक निरुक्तादि प्रमाण से रुद्र को देवत्त्व निरूपण और तिसी प्रसंग में इन्द्रादि देवता विग्रह निरूपण पूर्वक नमः पद को अन्नादि वाचकत्त्व में निघण्टु महाभाष्य प्रमाण निरूपण और वाहगुरु शब्दार्थ नि

रूपण तथा नमस्ते वाक्य के अर्थ का निरूपण॥८॥ दयानन्द का मता
न्तरजाल प्रवेश निरूपण पूर्बक निरुक्त मंत्र प्रमाण करके देवता प्र
भाव निरूपण और पूर्व उक्तानुवाद पूर्वक ऋग्वेद मंत्रों करके तथा
श्रुति व्याससूत्रों करके शंकर सिद्धान्त को वैदिकत्व निरूपण और
वादि पक्ष को अवैदिकत्व निरूपण॥९॥ अद्वैत सिद्धान्त में प्रमाण य
जुर्मंत्रार्थ निरूपण और दयानन्दाभिमत भेद बोधक वाक्य व्यवस्था
निरूपण और अभेद प्रतिपादक मंत्रार्थ निरूपण॥१०॥ अपाणि इत्या
दि श्रुत्यर्थ निरूपण और वाद्यभिमत श्रुत्यर्थ का श्रुत्यन्तरानुसार
ता से खण्डन निरूपण॥११॥ मंत्रार्थानुसारी गुरु नानक वचनार्थ
निरूपण और गुरु नानक मत में किये दयानंद के आक्षेप का खण्डन
निरूपण॥१२॥ दयानन्द लिखित प्रणव अर्थ खण्डन और मंत्र ब्रा
ह्मण निरुक्त प्रमाण कर प्रणवार्थ निरूपण और गुरु नानक मिथ्याभि
प्राय निरूपक दयानंदादि कृत निंदा में कपटाभिप्राय निरूपण॥१३
व्याहृतिययावदर्थ निरूपण और दयानंद कृत व्याहृत्यर्थ खण्डन।
१४॥ गायत्र्यर्थ का यथावत् ब्राह्मण भाग कर निरूपण और दयानंद कृत
गायत्र्यर्थ खण्डन॥१५॥ कैवल्य मोक्ष निरूपण और ब्रह्मलोक निरूप
ण और ब्रह्मलोक प्राप्तिद्वारा क्रम मुक्ति निरूपण॥१६॥ दयानंद का दे
वता निषेधक लेख के खण्डनार्थ पातंजल सूत्र व्याख्यान व्यासऋषि
प्रणीत भाष्य करके भू आदि सप्तलोक निरूपण और ब्रह्मलोक पर्य्यंत
सर्व लोक निवासि मनुष्य यक्ष राक्षस पिशाच गंधर्व देवतादि तथा ति
न के स्थान का निरूपण॥१७॥ दयानंदाभिमत मुक्त जन्म बोधक मंत्रा
र्थ खंडन और मन्त्रान्तरानुसारता से यथावत् मंत्रार्थ निरूपण और मु
क्त का जन्माभाव निरूपण॥१८॥ दयानंदाभिमत मुक्त जन्म बोधक

मुण्डक तथा सांख्यसूत्र का यथार्थार्थ निरूपण ॥१९॥ इति प्रथम मोक्षप्रकरण विषय निरूपणम् ॥ अथ द्वितीय प्रकरण विषय निरूपण लिखते हैं।

कणाद जैमिनि सूत्र कर धर्म्म स्वरूप लक्षण निरूपण तथा ब्राह्मण भाग और मंत्र करके धर्मस्वरूप निरूपणादि और वादि मत में धर्म्म स्वरूपाभाव कथन ॥१॥ प्रतीकोपासना तथा अहंग्रह उपासना स्वरूप और प्रमाण प्रश्न पूर्वक तिनके स्वरूप प्रमाण निरूपण में से प्रतीकोपासना स्वरूप तथा प्रमाण निरूपण ॥२॥ प्रतीकोपासना अर्थात् प्रतिमा पूजन में दयानंद कृताक्षेप पूर्वक श्रुति सूत्र प्रमाण कर आक्षेप निराकरण और प्रतीकोपासना प्रतिपादन ॥३॥ अहंग्रहोपासना स्वरूप और प्रमाण निरूपण ॥४॥ सत्यभाषण प्रशंसा प्रतिमा पूजक को जड़ पूजक कथन और प्रतिमा को पाषाणकथन को मिथ्याभाषण में पर्य्यवसान कथन और शूद्र को वेदविद्याधिकारित्व कथन को मिथ्या भाषण में पर्य्यवसान कथन ।५। अवताराक्षेप पूर्वक अनादि जीव जन्मवत् युक्ति तथा मंत्रप्रमाण कर ईश्वरावतार निरूपण ॥६॥ पराभिमत परमेश्वराकार को औपाधिक स्वीकार में भी औपाधिक शब्द के अवयवार्थ निरूपण कर सर्वेष्ट सिद्धि प्रतिपादन और वाद्यभिमत स्वतंत्र जड़ प्रकृति को उपादान कारणता खण्डन और पराभिमत जीव स्वरूप को अनात्मता प्रतिपादनम् ॥७॥ वेदान्ति पूर्वपक्ष। प्रविष्ट श्रुति बचनों करके वादि पक्ष खण्डन और सत् शब्द को प्रकृतिवाचकता खण्डन और नेहनाना इत्यादि श्रुति तथा सर्वंखलु इत्यादि श्रुति का वादि कृत अर्थ खण्डन और यथावत् अर्थ प्रतिपादन और वादि संमत सगुण निर्गुण खण्डन ॥८॥ तत्सृष्ट्वा, इत्या

श्रुति वचन का सिद्धान्त व्याख्यान निरूपण और सिद्धान्त अर्थ में वादि कृत कुतर्क खण्डन तथा अभेदमत में वादिकृत आक्षेप खण्डन ॥९॥ ईश्वर का २१ प्रकार शरीर निरूपण और स्वतंत्र जड़ प्रकृति पक्ष खंडन और ब्रह्म को उपादानता प्रतिपादन और अहंब्रह्मास्मि, इस वाक्य के अर्थ को मंत्र और ब्राह्मण करके निरूपण ॥१०॥ मंत्र और ब्राह्मण को वेदत्व स्थापन और पंचकोश निरूपण और महावाक्यार्थ निरूपण तथा इस विषय में वाद्युक्ति खण्डन ॥११॥ ब्रह्मचर्य्य प्रभाव निरूपण और वादि कल्पित नियोग पक्ष निराकरण ॥१२॥ भगवत भक्ति द्वारा विधवा कालक्षेप निरूपण और नामोपासना महत्त्व निरूपण और दम दान दया साधन निरूपण ॥१३॥ दान पितृश्राद्ध तीर्थ प्रभावादि निरूपण और अग्निहोत्रादि कर्म्मों को सफलता निरूपण ॥१४॥ इस प्रकार इस ग्रन्थ में इतने तो मुख्य२ विषयों का निरूपण किया है और अवान्तर विषय तो अनन्त हैं यदि श्रद्धा पूर्बक वेद वेदाङ्ग में प्रतिपादित अर्थ को इस ग्रन्थद्वारा श्रवण करेगा वा विचारेगा तो कुमत संस्कार समुद्भूत वृक्ष को निर्मूल करेगा यह ग्रन्थ वेदार्थ में अश्रद्धा रूप विशूचिका निवर्त्तक मंत्र है। और प्रधानता से दयानंद जाल काटने को कुठाररूप है यदि कोई विचारे वा श्रवण करेगा तो मालूम होगा ॥

इति

जानकी प्रसाद प्रधान
धर्म्मसभा डिबाई
ज़िला बुलन्दशहर